गरीबी या अमीरी

अथवा

श्रम या उत्तराधिकार

पाँच अङ्कों में एक नाटक

सेठ गोविन्ददास

हिंदुस्तानी एकेडेमी
उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

प्रथम मुद्रण : १९४७
द्वितीय मुद्रण : १९५३

मूल्य २)

सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

प्रकाशकीय

इस नाटक के रचयिता सेठ गोविंद दास हिंदी-जगत के सुपरिचित नाटककार हैं और उनकी अनेक नाटकीय रचनाएँ हमारे आज-कल के साहित्य में अपना स्थान बना चुकी हैं।

सेठ जी की इस नई कृति—'गरीबी या अमीरी'—को प्रस्तुत करते हुए हमें विशेष हर्ष होता है। इस रचना में उनकी नाट्यकला का पूर्णतया परिपाक हुआ है। सन् १९४४ में हिंदुस्तानी एकेडेमी की ओर से यह विज्ञप्ति निकली थी कि सबसे अच्छे अप्रकाशित नाटक पर यहाँ से १२००) का पुरस्कार रचयिता को भेंट किया जायगा और इस संबंध में लेखकों को अपनी रचनाओं की पांडुलिपियां भेजने के लिए आमंत्रित किया गया था। प्राप्त पांडुलिपियों की जाँच के आधार पर जो नाटक हमारे निर्णायकों ने सर्वोत्तम ठहराया वह यही है। नवंबर १९४५ में इस पर पुरस्कार की घोषणा हो चुकी है।

सेठ गोविंद दास ने नाट्यरचना और रंगमंच की आवश्यकताओं पर भी बहुत कुछ विचार किया है, जिसे कि वह अपनी पुस्तिका 'नाट्यकला-मीमांसा' में प्रकट कर चुके हैं। प्रस्तुत नाटक पर लेखक का लिखा हुआ 'निवेदन' उनके पूर्व-प्रकाशित विचारों का एक प्रकार से पूरक है और नाट्यरचना के 'टेकनीक' और रंगमंच की व्यवस्था पर कुछ नए विचार सामने उपस्थित करता है। विबादास्पद विषयों को उठाने और उनपर अपने स्वतंत्र विचार पाठकों के सामने रखने में लेखक ने संकोच नहीं किया है। हमें आशा है कि रंगमंच के व्यवस्थापक प्रयोग द्वारा उनकी परख करेंगे।

इस रचना पर दिए जाने वाले पुरस्कार की रकम ओइल और कैमारा (ज़िला खीरी, अवध) के श्रीमान् राजा युवराजदत्त सिंह साहब ने प्रदान की है। इसके लिए एकेडेमी के व्यवस्थापकों की ओर से मैं राजा साहब के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करता हूँ।

धीरेंद्र वर्मा

हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद — मंत्री तथा कोषाध्यक्ष

निवेदन

प्रस्तुत नाटक 'गरीबी या अमीरी' यद्यपि सन् ४१ में जबलपुर जेल में लिखा गया है, परन्तु इसका विचार और सिनापसेस सन् ३८ के आरम्भ में, जब मैं आफ्रिका से लौट रहा था, उस समय जहाज में तैयार हुआ था। आफ्रिका में मैंने जो कुछ देखा और वहाँ के भारतीयों के सम्बन्ध में सुना था, उसके आधार पर इस नाटक का विचार उठा था और यह सिनापसेस तैयार हुआ था, परन्तु इसके सिवा रूस की 'निहलिस्ट' कथाओं का भी इस विचार और सिनापसेस पर प्रभाव था। रूस के इतिहास में 'निहलिस्ट' लोगों का एक विशेष स्थान है। रूस की लाल क्रान्ति के पहले कुछ संपन्न व्यक्ति देश के लिए सर्वस्व का त्याग कर देशसेवा में लगे थे। इनका काफी बड़ा और मजबूत संगठन था। वे अपने को 'निहलिस्ट' कहते थे। इनमें से अधिकांश ने अपनी सम्पत्तियों को इसलिए छोड़ा था कि वे उनका उपार्जन अनुपयुक्त मार्गों से हुआ मानते थे।

जबलपुर जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट मेजर एलन एक साहित्य-प्रेमी व्यक्ति थे। उन्होंने मेरा साहित्यिक अनुराग देख अपनी कुछ पुस्तकें मुझे पढ़ने के लिए दीं। इन पुस्तकों में एक बहुत पुराने लेखक मि० लिओनार्ड मैरिक का 'दि हाउस आव् लिंच' नामक एक उपन्यास था। मुझे यह देख बड़ा आश्चर्य हुआ कि 'गरीबी और अमीरी' नाटक की कथा का मूल स्रोत 'हाउस आफ लिंच' से मिलता जुलता है। भिन्न-भिन्न युगों के भिन्न-भिन्न देशों में रहने वाले दो व्यक्तियों की विचारधारा में मुझे ऐसी एकता देख कर कम आश्चर्य नहीं हुआ। 'गरीबी और अमीरी' का लिखना आरम्भ करने के पहले मैं 'हाउस आफ लिंच' को पढ़ गया और इस उपन्यास का भी 'गरीबी और अमीरी' पर प्रभाव पड़ा है। अतः यद्यपि इस नाटक का विचार आफ्रिका से लौटते हुए वहां की देखी और सुनी हुई बातों के कारण स्वतंत्र रूप से मेरे हृदय में उठा था, तथा इसका सिनापसेस सन् ३८ के आरम्भ में जहाज में ही बना था, तथापि मैं यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता कि मौलिक होते

हुए भी यह नाटक रूस की 'निहलिस्ट' कथाओं एवं 'हाउस आफ् लिंच' उपन्यास से प्रभावित है।

'ललित कला', 'नाटक के टेकनीक' आदि के सम्बन्ध में मैंने अपने विचार 'तीन नाटक' के प्राक्कथन में प्रकट किये थे। यह प्राक्कथन पृथक् रूप से 'नाट्य-कला मीमांसा' के नाम से 'महाकोशल साहित्यमंदिर' ने प्रकाशित किया है। उसके पश्चात आज पर्यन्त 'ललित कला' और 'नाटकों' के सम्बन्ध में मेरे विचारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। कौन कला श्रेष्ठ कही जा सकती है तथा कौन सी कलाजन्य वस्तु, एवं नाटक का कला में जो स्थान है, इन विषयों पर मेरा आज भी वही मत है जो बारह वर्ष पूर्व था, परन्तु 'टेकनीक' के सम्बन्ध में मेरी राय कुछ बदल गयी है।

'तीन नाटक' के प्राक्कथन में मैं कह चुका हूँ कि नाटक की टेकनीक के विषय में मैं आधुनिक पश्चिमी नाटकों की टेकनीक के गुरु नार्वे के इब्सन का अनुयायी हूँ। इब्सन के 'स्वाभाविकवाद' के सम्बन्ध में 'नाट्यकला मीमांसा' में चर्चा हो चुकी है। 'स्वाभाविकवाद' को पूर्णावस्था तक पहुँचाने के प्रयत्न में इब्सन ने नाटकों में से दोनों प्रकार के स्वगत कथन अर्थात् 'अश्राव्य' (सालीलाकी) और 'नियत श्राव्य' (एसाइड) का पूर्ण बहिष्कार किया था। दोनों में से प्रथम प्रकार का स्वगत 'अश्राव्य' को कुछ विशेष प्रकार से या किसी किसी खास परिस्थिति में स्वाभाविक ढंग से लिखा जा सकता है। 'नियत श्राव्य' सर्वथा अस्वाभाविक जान पड़ता है। स्वगत कथनों के सम्बन्ध में मैंने 'नाट्यकला मीमांसा' में अपने विचार निम्नलिखित शब्दों में प्रकट किये थे—

"स्वगत कथन से अधिक अस्वाभाविक बात नाटकों में और कोई नहीं हो सकती, जिसमें दूसरी प्रकार का स्वगत कथन (Aside) तो सर्वथा अस्वाभाविक है। प्रथम प्रकार का स्वगत कथन साधारणतया स्वाभाविक नहीं है, क्योंकि मनुष्य हृदय में जो कुछ सोचता है, उसे सदा बड़बड़ाया नहीं करता, पर हाँ, कभी कभी हृदय में भावों का अत्यधिक आवेग हो जाने पर, एक-दो वाक्य मुख से निकल सकते हैं। इसी प्रकार असीम शोक में विलाप करते हुए एक लम्बा स्वगत कथन हो सकता है, कोई पागल प्रलाप करता हुआ, या मादक द्रव्य खाया हुआ व्यक्ति एक लम्बा स्वगत भाषण कर सकता है और भावों के बहुत अधिक प्रवाह में चित्र,

मूर्ति आदि से भी स्वगत वार्तालाप संभव है। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि ऐसे अवसरों पर स्वगत कथन न हो तो वह अस्वाभाविक बात होगी। स्वयं इब्सन तथा उसके अनुयायियों के नाटकों में भी हमें इस प्रकार के स्वगत कथन मिलते हैं। स्वगत कथन कहां स्वाभाविक होता है, इसके अनेक दृष्टान्त पश्चिमी नाटकों में मिलते हैं। यहाँ मैं बर्नार्ड शा के नाटक 'प्रेस कटिंग' से एक उदाहरण देता हूँ। इस नाटक में जनरल मिचरन जब अपने घर के नीचे की सड़क पर 'वोट फार वीमेन', 'वोट फार वीमेन' की चिल्लाहट सुनता है, तब चूंकि वह वर्तमान शासन-सुधारों के सर्वथा विरुद्ध है, क्रोध से अपनी बन्दूक उठा लेता है और अपने आप कहता है— 'वोट फार वीमेन' 'वोट फार वीमेन' 'वोट फार विमेन', 'वोट फार चिलरन', 'वोट फार बेबीज़'। जनरल के उस समय के इस स्वगत कथन से स्वाभाविकता उलटी बढ़ गयी है। पर इस प्रकार के स्थलों को छोड़ कर पात्रों का रंगभूमि पर लम्बे लम्बे स्वगत भाषण करना सर्वथा अस्वाभाविक है। यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि कालिदास, शेक्सपीयर आदि सभी प्राचीन पूर्वीय और पश्चिमी सफल नाट्य-कारों के नाटकों में इस प्रकार के कथन हैं और इतने पर भी ये नाटक जैसे उच्च कोटि के हैं वैसे आजकल के नाटक नहीं लिखे जाते। परन्तु, संसार में कोई वस्तु पूर्णता को न पहुँची है, न कभी पहुँच ही सकेगी। कालिदास और शेक्सपीयर के पश्चात् नाटक-कला का और भी विकास हुआ है। यदि उनके समान नाटकों की अब सृष्टि नहीं होती तो इसका कारण यह है कि वैसे प्रतिभाशाली नाटककारों का इस समय जन्म नहीं हुआ। स्वगत कथन यदि उनके नाटकों में न होता तो इसमें सन्देह नहीं कि नाटक-कला की दृष्टि से वे नाटक और भी अच्छे होते। स्वगत भाषणों को हटाने के लिए पश्चिम के नाटककारों ने कई उपाय निकाले हैं। नाटकों में वे कुछ ऐसे पात्र जोड़ देते हैं जिनका काम केवल मुख्य पात्रों से बातचीत करना ही होता है। टेलीफोन द्वारा बातचीत से भी स्वगत कथन का कार्य चल जाता है और किसी किसी नाटक में अपने पालतू कुत्ते, बिल्ली, बन्दर या पक्षियों के सामने कुछ पात्र अपने मन की बातें कह डालते हैं। स्वगत कथन का काम इनमें से किसी भी साधन का सावधानतापूर्वक उपयोग करने से चल सकता है।"

'अश्राव्य' और 'नियत श्राव्य' दोनों प्रकार के स्वगत भाषण पात्र के आंतरिक भावों और द्वन्द्वों को प्रकाश में लाने के लिए लिखे जाते हैं और कला में आन्तरिक

भावों एवं द्वंद्वों को प्रकाश में लाने के लिए लिखे जाते हैं; और कला में आन्तरिक भावों एवं द्वंद्वों का प्रकाशन ही सबसे मुख्य वस्तु है। 'अश्राव्य' उपर्युक्त उद्धरण नंबर एक के अनुसार लिखने से यह कार्य पूरा-पूरा नहीं हो सकता, इसका मैंने अनुभव किया है। सन् १९४० के नवम्बर में जब मैं सेंट्रल असेम्बली की बैठक के लिए दिल्ली गया हुआ था तब हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक श्री प्रो० नगेन्द्र से मेरे नाटकों पर कुछ चर्चा हुई थी। इस चर्चा में उन्होंने मेरे नाटकों में अन्तर्द्वन्द्व की कमी की ओर संकेत किया था। दिल्ली से लौट कर मैं फिर जेल चला गया और वहाँ इस विषय पर मुझे ध्यानपूर्वक मनन करने का अवसर मिला। इसी समय मैंने अमरीका के प्रसिद्ध नाटककार नील के जिन्हें कुछ वर्ष पूर्व नोबुल पुरस्कार मिला था, नाटक पढ़े। मि० नील ने तो अपने इस समय के लिखे हुए नाटकों में 'अश्राव्य' और 'नियत श्राव्य' दोनों ही प्रकार के स्वगत कथनों का उपयोग किया है। उनके नौ अंक के एक नाटक 'स्ट्रेन्ज इन्टरल्यूड' में तो ये कथन भरे हुए हैं। मेरा विनम्र मत है कि 'नियत श्राव्य' का तो नील महोदय भी स्वाभाविक रीति से उपयोग नहीं कर सके, परन्तु 'अश्राव्य' का वे सफल प्रयोग कर सके हैं। मि० नील के दो मोनोड्रामा भी जिनमें एक ही पात्र बोलता है, मैंने जेल में पढ़े। नील के सिवा स्वीडन के प्रसिद्ध नाटककार स्ट्रैंडबर्ग के भी कुछ मोनोड्रामे मुझे जेल में पढ़ने को मिले। मोनोड्रामा में तो सारे कथन 'अश्राव्य' ही रहते हैं। सोचने विचारने और उपर्युक्त कलाकारों की कुछ कृतियाँ पढ़ने के बाद में भी इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि अश्राव्य स्वाभाविक तरीके से लिखा जा सकता है और उसके बिना कुछ आन्तरिक भावों एवं अन्तर्द्वन्द्व का ठीक प्रकाशन कठिन ही नहीं, असंभव है। इसी लिए इस बार जेल में लिखी हुई रचनाओं में से कुछ में मैंने 'अश्राव्य' का उपयोग किया है और कुछ मोनोड्रामे भी लिखे हैं।

प्रस्तुत नाटक 'गरीबी या अमीरी' में 'अश्राव्य' का प्रचुर परिमाण में उपयोग हुआ है, कहीं कहीं तो ये 'अश्राव्य' कथन बहुत लम्बे हो गए हैं। नाटक को पूरा करने के बाद मैंने इसे जेल में तथा जेल से छूटने पर बाहर कुछ मित्रों को पढ़कर सुनाया। वे स्वगत कथन उनमें से किसी को भी बुरे या अस्वाभाविक न जान पड़े, परन्तु इतने से ही मुझे संतोष नहीं हुआ। मैंने एक प्रसिद्ध सिनेमा स्टार को बुलाकर इन स्वगत कथनों में से कुछ लम्बे कथनों को एक्टिंग के साथ सुना और

देखा। मुझे तथा मेरे अन्य जो मित्र मेरे साथ थे, सभी को ये अच्छे जान पड़े। मैंने एक बात और की। नाटक में दो पात्र और जोड़ कर इन स्वगत कथनों को निकाल इन्हें कथोपकथन में रखा, परन्तु यह प्रयत्न तो सर्वथा असफल हुआ। अतः इन्हें आरंभ में जिस रूप में लिखा गया था उसी रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। यदि यह नाटक सफल हुआ तो इसका प्रधान कारण ये स्वगत कथन होंगे और यदि असफल हुआ तो भी ये ही। परन्तु इस प्रयत्न में मैं सफल हुआ हूँ या असफल, इस संबंध में कुछ भी कहने का मुझे अधिकार नहीं है।

रंगमंच पर और नाटक तथा सिनेमा के सहयोग की आवश्यकता पर मैंने अपने विचार 'नाट्यकला मीमांसा' में प्रकट किए हैं। उसके बाद मैंने पश्चिम के रंगमंचों पर कुछ और पढ़ा है। कलकत्ते में दो 'रिवाल्विग' रंगमंच देखे हैं। मैंने अपने आधुनिक नाटकों के खेलने के लिए एक विशाल रंगमंच को अपनी कल्पना में रख इन नाटकों की रचना की है। जिस समय प्राचीन भारत और प्राचीन यूनान में नाटकों का सर्वप्रथम अभिनय आरम्भ हुआ था, उस काल और इस समय में में बहुत अन्तर हो गया है। बिजली और रेडियो के आविष्कार के बाद तो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। सिनेमा और टाकी सिनेमा के निकलने के पश्चात् नाटकों के पतन का प्रधान कारण यह है कि सिनेमा से टेकनिकल बातों में नाटक बहुत पीछे रह गया। परन्तु जिस अमेरीका देश में सिनेमा ने अधिक उन्नति की, वहीं अब नाटकों का पुनरुद्धार हो रहा है। इस पुनरुद्धार के समय रंगमंच में वर्तमान आविष्कारों का उपयोग प्रधान स्थान रखता है और यदि यह न हो तो नाटक सिनेमा से कंपीट कर ही नहीं सकता।

हम भी यदि अपने देश में रंगमंच की स्थापना करना चाहते हैं, तो हमें बड़े-बड़े नगरों में ऐसी नाट्यशालाएँ बनानी होंगी, जिनमें हम नूतन आविष्कारों को उचित स्थान दे सकें। ऐसी नाट्यशालाओं में हमें निम्नलिखित बातें प्रधानतः ध्यान में रखनी होंगी—

(१) रिवाल्विग स्टेज, जिसमें बड़े-बड़े अनेक दृश्यों की एक साथ तैयारी हो सकेगी और एक के बाद दूसरे बड़े दृश्य का प्रदर्शन बिजली की पावर द्वारा रंगमंच के प्लेटफार्म को घुमाकर किया जायगा। अभी दो बड़े दृश्यों के बीच में एक या एक से अधिक छोटे दृश्यों की व्यवस्था आवश्यक होती है, जिससे छोटे दृश्यों के अभिनय

होते समय दूसरे बड़े दृश्य की तैयारी नेपथ्य में हो सके। रिवाल्विंग स्टेज में यह आवश्यकता न रहेगी और इस छोटे दृश्यों के आयोजन में कभी कभी जो शिथिलता या अस्वाभाविकता आ जाती है उससे हम बच जायँगे। साथ ही बड़े दृश्यों की तैयारी में जो समय लगता है तथा जल्दी-जल्दी करने के कारण यह तैयारी जो अनेक बार अधूरी ही रह जाती है और पूरी नहीं हो पाती यह भी न होगा।

(२) माइक्रोफोन और लाउड स्पीकर।

अभी पात्रों के सम्भाषण और गाने दूर बैठने वालों को अच्छी तरह नहीं सुन पड़ते। फिर जो बात धीरे-धीरे बोली जानी चाहिए वह पात्रों को चिल्ला चिल्ला कर कहनी पड़ती है। माइक्रोफोन रंगमंच पर इस प्रकार लगेंगे कि दिखें भी नहीं और उनके द्वारा आवाज लाउडस्पीकर्स के द्वारा उचित और स्वाभाविक वाल्यूम में हर प्रेक्षक के पास पहुँच जावे।

(३) लाइट की ठीक व्यवस्था।

अभी ऊपर टँगी हुई तथा फुट लाइट्स से ऐसा जान पड़ता है कि सारा नाटक रात को बिजली की रोशनी के प्रकाश में हो रहा है । उषा और संध्या की सुनहली और लाल, चाँदनी रात की नीलिमा लिए हुए अत्यन्त श्वेत, दोपहर की धूप, बिजली की चमक आदि भिन्न-भिन्न प्रकार की व्यवस्था से नाटक के समयों के अन्तर का बोध होगा; इतना ही नहीं प्रदर्शन में सौन्दर्य की भी अभिवृद्धि होगी।

(४) दो यवनिकाएँ—वृहत् और लघु।

वृहत यवनिका का पतन होगा अंक समाप्ति पर तथा लघु यवनिका का पतन होगा एक ही अंक में यदि अनेक दृश्य हैं तो प्रत्येक दृश्य की समाप्ति पर। इससे दृश्य और अंक की समाप्ति का स्पष्ट ज्ञान हो जायगा। साथ ही उठने और गिरने वाले परदों पर जो प्रदर्शन होता है उसमें उन परदों में उठने के पहले पात्रों का प्रस्थान तथा गिरने पर पात्रों का प्रवेश अनिवार्य होता है। साथ ही उन्हें खड़े-खड़े सम्भाषण करना पड़ता है इससे । अनेक बार इन पात्रों का प्रवेश और प्रस्थान बड़ा अस्वाभाविक जान पड़ता है और कई बार ऐसा भास होता है, मानों उस सम्भाषण के लिए ही उन पात्रों को रंगमंच पर जबरदस्ती लाया गया हो।

(५) उपक्रम और उपसंहार पटों की योजना।

उपसंहार और उपक्रम के विषय में मैंने अपने एकांकी नाटकों के संग्रह 'सप्त रश्मि' के प्राक्कथन में विस्तृत विवेचन किया है । एकांकी और पूरे नाटक दोनों में ही, किसी-किसी में उपक्रम और उपसंहार दोनों और किसी-किसी में एक उपक्रम में आवश्यक मानता हूँ। एकांकी में तो कुछ स्थलों पर यह उपयोग मेरे मत से अनिवार्य है । इस सम्बन्ध में मैंने 'सप्तरश्मि' के प्राक्कथन में जो कुछ लिखा था उसके कुछ अंश को यहाँ उद्धृत करता हूँ:—

"पूरे नाटक के लिए 'संकलनत्रय' जो नाट्यकला के विकास की दृष्टि से बड़ा भारी अवरोध है वही 'संकलनत्रय' कुछ फेर-फार के साथ एकांकी नाटक के लिए जरूरी चीज है। 'संकलनत्रय' में 'संकलनद्वय' अर्थात्, नाटक का एक ही समय की घटना तक परिमित रहना तथा एक ही कृत्य के सम्बन्ध में होना तो एकांकी नाटक के लिए अनिवार्य है। जो यह समझते हैं कि पूरे नाटक और एकांकी नाटक का भेद केवल उसकी बड़ाई छुटाई है, मेरी दृष्टि से वे भूल करते हैं। एकांकी नाटक छोटे हों, यह जरूरी नहीं है। वे बड़े भी हो सकते हैं। बड़े नाटक का चाहे रेडियो में या उसी प्रकार के थोड़े समय के दूसरे आयोजनों में उपयोग न हो सके, किन्तु बड़े होने पर भी वह एकांकी हो सकता है। एकांकी नाटक में एक से अधिक दृश्य भी हो सकते हैं। पर यह नहीं हो सकता कि एक दृश्य आज की घटना का हो, दूसरा पन्द्रह दिनों के बाद की घटना का, तीसरा कुछ महीनों के पश्चात् का और चौथा कुछ वर्षों के अनन्तर। यदि किसी एकांकी में एक से अधिक दृश्य होते हैं तो वे उस समय की लगातार होने वाली घटनाओं के सम्बन्ध में हो सकते हैं। 'स्थल-संकलन' जरूरी नहीं है, पर 'काल-संकलन' होना ही चाहिए। किसी-किसी एकांकी नाटक के लिये भी काल-संकलन अवरोध हो सकता है। ऐसी अवस्था में 'उपक्रम' या 'उपसंहार' की योजना होना चाहिए। इस संग्रह में संग्रहीत नाटकों में से कुछ में मैंने 'उपक्रम' और उपसंहार' दोनों का तथा किसी में एक का उपयोग किया है। उपक्रम और उपसंहार का उपयोग सिर्फ़ 'काल-संकलन' के अवरोध से बचने के लिये ही नहीं है। कभी कभी 'काल-संकलन' रहते हुए भी इनका उपयोग हो सकता है जैसा मैंने 'अधिकार-लिप्सा' में किया है। मेरे मत से इस प्रकार के उपयोग से भी नाटक का सौंदर्य बढ़ जाता है पर इस प्रकार का उपयोग अनिवार्य नहीं। 'काल-संकलन' को तोड़ कर यदि अधिक दृश्य रखना आवश्यक हो तो

मेरा मत है कि 'उपक्रम' और 'उपसंहार' अनिवार्य हैं। 'उपक्रम' और 'उपसंहार' का उपयोग नाटक के आरम्भ या अन्त में ही हो सकता है, अतः बीच के दृश्यों में तो मेरे मतानुसार एकांकी में 'काल-संकलन' रहना ही चाहिये। जो एकांकी रंगमंच पर खेले जावें उनमें दर्शकों को 'उपक्रम' या 'उपसंहार' की जानकारी हो जाय, इसलिए यवनिका उठते ही एक दूसरे पर्दे पर 'उपक्रम' या 'उपसंहार' का लिख देना आवश्यक है, और यवनिका के उठने के बाद यह परदा भी उठा दिया जाय। रेडियो में 'उपक्रम' या 'उपसंहार' की सूचना शब्दों में दी जा सकती है। आरम्भ में यह प्रथा कुछ विलक्षण सी जान पड़ेगी, परन्तु धीरे धीरे आँखें और कान इसके लिये अभ्यस्त हो जायेंगे, जिस प्रकार यवनिका गिरते समय हम यह जान जाते हैं कि नाटक का एक अंक समाप्त हो रहा है और दूसरे अंक में सम्भव है हम कुछ महीनों या कुछ वर्षों के बाद की घटना देखें, उसी प्रकार उपक्रम या 'उपसंहार' पढ़ते या सुनते ही हमें मालूम हो जायगा कि मुख्य घटना और उसके बीच कुछ काल चाहे वह दिन, महीने या वर्ष हों, बीतने वाला या बीत गया है। जिन एकांकी नाटकों के सिनेमा फिल्म बनें उनमें तो 'उपक्रम' और 'उपसंहार' सहज में लिखा जा सकता है क्योंकि फिल्मों में तो अक्षरों में लिखी हुई चीज को पढ़ने के लिये हमारी आँखें अभ्यस्त हो गई हैं। मैंने अब तक 'उपक्रम' और 'उपसंहार' का इस प्रकार का उपयोग पश्चिमी या भारतीय नाटकों में नहीं देखा। किसी नाटक को पढ़ते समय 'उपक्रम' और 'उपसंहार' खटक भी नहीं सकते। खेलने के समय इनका उपयोग एक विवादग्रस्त प्रश्न हो सकता है, परन्तु मेरे मत से खेलते समय भी उपर्युक्त पद्धति से इनका उपयोग किया जा सकता है। मैं जानता हूँ कि यह विषय विवादग्रस्त है, परन्तु बहुत कुछ सोचने विचारने के बाद मैंने इसे विद्वानों के सम्मुख रखने का साहस किया है। 'संकलन' को एकांकी के लिये अनिवार्य मानने के कारण तथा वह एकांकी कला के विकास के लिए अवरोध भी न हो, इसलिये मैं इस उपाय को विद्वानों के सम्मुख रख रहा हूँ।"

(६) एक सफेद चादर।

नाटक होते हुए कभी कभी कुछ दृश्य सिनेमा के फिल्मों द्वारा भी दिखाया जाना मैं आवश्यक समझता हूँ। 'नाट्यकला मीमांसा' में मैंने इस विषय में निम्नलिखित मत दिया है :—

"नाटक और सिनेमा का कहीं-कहीं सुन्दर मिश्रण हो सकता है। जैसे युद्ध, चुनाव, मेले इत्यादि के दृश्य यदि नाटकों में भी सिनेमा के द्वारा दिखाये जावें तो कहीं अधिक स्वाभाविक दिख पड़ेंगे और उनसे मन पर प्रभाव भी अधिक पड़ेगा। युद्ध की सेनाएँ और लड़ाई, चुनाव, मेले आदि की सवारियाँ और चहल-पहल रंगभूमि में उतनी अच्छी तरह नहीं दिखाई जा सकतीं जितनी सिनेमा में। यदि कुछ पात्रों के मुख से इनका वर्णन कराया जाय, जो बहुधा किया भी जाता है, तो मन पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता, अतः नाटक के साथ ही सिनेमा मशीन की योजना एवं ऐसे अवसरों पर नाटक के बीच-बीच में परदे के स्थान पर श्वेत चादर गिरा १०-१०, २०-२० मिनटों तक ये दृश्य फिल्मों द्वारा दिखाने का प्रबन्ध अवश्य ही सफल हो सकता है।"

प्रधानतया उपर्युक्त बातों का जिस रंगमंच में समावेश होगा तथा और भी अनेक छोटी-छोटी बातें जिस रंगमंच की उन्नति के लिये जोड़ी जायँगी, ऐसे रंगमंच की मैं हिन्दी-जगत के लिये आवश्यकता मानता हूँ।

पर मेरे उपर्युक्त कथन का यह अर्थ न समझ लिया जावे कि मेरा कोई भी नाटक ऐसे रंगमंच के बिना नहीं खेला जा सकता। मेरे विनम्र मत से मेरे अधिकांश पूरे और एकांकी नाटक तो साधारण से साधारण रंगमंच पर खेले जा सकते हैं। एमेच्योर्स किसी भी स्कूल या कालेज में उन्हें खेल सकते हैं। परन्तु मेरे किसी किसी नाटक में उपर्युक्त प्रकार का रंगमंच आवश्यक है, इससे मैं इंकार नहीं कर सकता। साथ ही मेरा मत है कि सिनेमा के इस टाकी युग में जब तक उपर्युक्त प्रकार का रंगमंच न हो तब तक टाकी सिनेमा से नाटक का कंपटीशन भी संभव नहीं है।

जो हिन्दी पन्द्रह करोड़ से भी अधिक मनुष्यों की मातृभाषा है, जिसे तीस करोड़ से भी ज्यादा लोग समझते हैं, उसका एक भी रंगमंच न हो, इससे अधिक दुःख की और कोई बात नहीं हो सकती। नाटक और सिनेमा दोनों को मैं राष्ट्र-निर्माण के प्रधान अंगों में मानता हूँ। सिनेमा और टाकी के इस युग में, जिस अमेरिका प्रदेश में इनका सबसे प्रधान स्थान है, रंगमंच की फिर से उन्नति आरंभ हुई है। मुझे तो भारतवर्ष में भी वह समय दूर नहीं दिखता जब जनता की रुचि फिर से नाटकों की ओर होगी और हिन्दी के रंगमंच का भी निर्माण होगा।

एक बात और कह देना मुझे आवश्यक जान पड़ता है और इसे मैं 'नाट्यकला

मीमांसा' में भी कह चुका हूँ। रंगमंच का यह विस्तृत वर्णन पढ़ने पर कोई यह न समझ ले कि मैं उन नाटकों को नाटक ही नहीं मानता जो खेले नहीं जा सकते। मेरे विनम्र मत में जो नाटक खेलने के योग्य नहीं है, वे नाटक भी नाटक हैं। यहां यह प्रश्न उठ सकता है कि फिर उपन्यास, कहानी और नाटकों में फर्क क्या है। फर्क है केवल टेकनीक का। हां, जो नाटक, नाटक की टेकनीक से लिखे हुए हों और खेले भी जा सकें उनके लिए यह अवश्य कहा जा सकता है कि सोने में सुगन्ध का मिश्रण हुआ है।

गोविन्ददास

मुख्य पात्र

(१) **लक्ष्मीदास** : दक्षिण आफ्रिका में एक भारतीय व्यापारी।

(२) **अचला** : लक्ष्मीदास की इकलौती पुत्री।

(३) **विद्याभूषण** : एक साहित्यिक, आगे चलकर अचला का पति।

(४) **सरस्वती चन्द्र** : अचला और विद्याभूषण का पुत्र।

(५) **विभावती** : अचला की मित्रा।

स्थान

(१) दक्षिण आफ्रिका में नैटाल प्रान्त का एक फार्म और डरबन नगर।

(२) हिन्दुस्तान में बम्बई नगर, महाबलेश्वर और मध्यप्रान्त का एक गाँव।

उपक्रम

स्थान : नैटाल में एक फार्म।

समय : संध्या।

[जून का महीना है, पर आफ्रिका में जाड़ा मई व जून तथा गरमी दिसम्बर और जनवरी में पड़ने के कारण कपकपाती हुई ठण्ड है। सूरज अस्ताचल के समीप है, अभी अँधेरा नहीं हुआ है । दूर पर क्षितिज दिखाई देता है, और जहाँ तक दृष्टि जाती है, हलके काले रंग की जमीन। जमीन सम होते हुए भी क्षितिज से सामने की तरफ नीची होती गई है, याने ढालू है, पीछे का हिस्सा काला और जुता हुआ है। नजदीक का भाग अभी जोता जा रहा है। इसमें कहीं छोटे-छोटे टीले, कहीं पथरीले टुकड़े और कहीं घास दिख पड़ती है। जमीन जोत रहे हैं भारतीय मजदूर जिसमें पुरुष और स्त्रियां दोनों ही हैं। सारा काम हाथ से हो रहा है, न बैल, घोड़े और हल बखर इत्यादि हैं, न ट्रेक्टर आदि किसी तरह की मशीनरी। बात यह है कि आफ्रिका की ऐसी विचित्र आबहवा है कि जहाँ शारीरिक मेहनत कर बैल तथा घोड़े आदि जीवित नहीं रह सकते, तथा जिस समय का दृश्य हम दिखा रहे हैं उस समय खेती की मशीनरी ईजाद न हुई थी। नैटाल "मार्डन कालोनी" का सारा बगीचा भारतीय मजदूरों ने बिना पशुओं और मशीनरी की मदद के, अपने खून को पसीना बनाकर ही नहीं पर अगणितों ने इस काम में खून बहाकर लगाया है। जमीन पर काम करने वाले मजदूर भारतीय होने पर भी भिन्न-भिन्न वर्णों के हैं—कुछ श्याम, कुछ गेहुएं और कुछ गोरे। इनके रंग और रूपों से इनमें अधिकांश मद्रास और गुजरात प्रान्त के दिख पड़ते हैं, कुछ हिन्दी भाषा भाषी भी। जाड़े का मौसम होने पर भी इनके शरीरों को काफी वस्त्र ढँके हुए नहीं हैं, और अत्यधिक श्रम के कारण कई के मुखों और गर्दनों पर पसीने की बूंदे ही नहीं धाराएँ दीख पड़ती हैं। ज्यादातर मजदूरों के शरीर कृश और गाल पिचके हुए हैं। उन पर कीचड़ तथा धूल इस तरह पड़ी हुई है मानों वह मांस के स्थान की पूर्ति कर

रही हो। कोई सब्बल और गेंती से जमीन खोद रहा है तथा कोई फावड़े से उसे सम कर रहा है। मजदूरों से काम लेने के लिए एक मेट मुकर्रर है। यह भी भारतीय है। इसकी चलित दृष्टि और पैर यह देख रहे हैं कि कोई मजदूर जरा सी सुस्ती तो नहीं करता या विश्राम तो नहीं लेता, मानों यह मेट एंजिन है और मजदूरों रूपी मशीनों को ठीक तरह अविरत चाल से चला रहा है। दाहिनी ओर नजदीक ही एक डेरे का थोड़ा भाग दिखाई देता है, पर उस डेरे के दरवाजे पर चिक के पड़े रहने से भीतर की कोई चीज नहीं दिखती। बाईं तरफ मजदूरों का कुछ निजी सामान पड़ा हुआ है; कुछ कपड़े, कुछ बर्तन और कुछ टोकने। इन्हीं टोकनों में से किसी किसी बड़े टोकने में इनके बच्चे भी पड़े हैं, मानों वे भी इनके सामान के ही भाग हैं। कोई-कोई बच्चा रो भी रहा है। दो बच्चों को उनकी माताएँ सूखे हुए स्तनों से दूध पिला रही हैं।]

मेट : (दोनों स्त्रियों के नजदीक आकर डाँटते हुए) यह समय बच्चों को दूध पिलाने का नहीं है, चलो काम करो।

एक औरत : क्यों, सरकार, आज छुट्टी नहीं होगी?

मेट : होगी, पर देर से, मालूम नहीं है साहब बहादुर आने वाले हैं?

दूसरी औरत : तो साहब बहादुर जब तक न आयँगे, छुट्टी न होगी सरकार?

मेट : (कड़ककर) अबे चलती है या बातें बनाती रहेगी।

पहली औरत : (गिड़गिड़ाते हुए) बच्चे भूखे जो हो गए हैं, सरकार, वे ये थोड़े ही जानते हैं कि साहब बहादुर के आने के सबब.....

मेट : (उसे मारते हुए) जबान लड़ाती है।

[वह औरत बच्चे को टोकने में डाल कर जाती है, बच्चा रोने लगता है।]

मेट : (दूसरी औरत के बच्चे को उसकी गोद से छुड़ाते हुए) और तू... तू...शैतान की खाला, इसी तरह बैठी रहेगी?

[उस बच्चे को मेट टोकने में पटकता है मानों किसी निर्जीव चीज को पटका हो। बच्चा रोने लगाता है। औरत भी रोती हुई काम पर जाती है।]

मेट : [एक मजदूर के पास जाते हुए जो खुदाई का काम रोक सब्बल को जमीन पर रख अपना पसीना पोंछ रहा है] अबे! ओ बदमाश के बच्चे, आराम कर रहा है!

मजदूर : [जल्दी से सब्बल उठाकर खोदते हुए] इस देश में, सरकार, न बैल हैं, न हल, बैलों और हलों का काम तक हाथों से करना पड़ता है। पसीना आ गया था।

मेट : बैशाख जेठ में भी इस आफ्रिका में पूस माघ सा जाड़ा पड़ता है और इसे पसीना आ रहा है! बादशाह है न कहीं का?

दूसरा मजदूर : [फावड़े से जमीन को सम करते हुए] आज छुट्टी न होगी, हुजूर?

मेट : [दाँत पीसकर] छुट्टी ! छुट्टी! हाँ, न होगी। रात भर काम करना होगा। बदजातों को जितनी छुट्टी की फिकर रहती है उससे सौवाँ हिस्सा भी अगर काम की रहे। हिन्दुस्थान से दस-दस गुनी मजूरी लेकर आफ्रिका काम करने आए हैं या छुट्टी का आराम लूटने?

तीसरा मजदूर : [गैती चलाते हुए] तो रात भर काम करना होगा?

मेट : [गरजकर] हाँ, हाँ, रात भर; और रात भर नहीं, लगातार तीन दिन और तीन रात। सुना? सुना?

चौथा मजदूर : [सब्बल से पत्थर उखाड़ते हुए] पर आपने तो कहा था कि साहब बहादुर...

मेट : [बीच ही में] यह तो बहुत देर की बात है। पर तुम शैतानों की छुट्टी की इतनी ख्वाहिश देखकर मैं अब तीन दिन और तीन रात छुट्टी न दूँगा। चाँदनी रात जो है।

[एक बच्चे की जोर से रोने की आवाज के कारण एक औरत काम छोड़कर उस ओर चली जाती है।]

मेट : [औरत को जाते देख जोर से] अरे कहाँ चली?

औरत : तीन दिन और तीन रात बच्चा भूखों थोड़ें ही मर सकता है?

मेट : [औरत के पीछे दौड़ गरज कर] बच्चा भूखों नहीं मर सकता! काम करने नहीं बच्चे जनने हिन्दुस्थान से पाँच हजार मील नैटाल आई है। रोज सालियाँ बच्चे जनती हैं और काम से जान चुराती हैं। [बाल पकड़ कर खींचते हुये] कामचोरों की चाची!

एक तरुण मजदूर : (खोदना बन्द कर गरजते हुए) आप औरत पर हाथ डालेंगे तो अच्छा न होगा।

मेट : (औरत को न छोड़ जोर से कहकहा लगा) यह हिन्दुस्थान का राजपुत्तर बोल रहा है !

[औरत को छोड़ देता है ; वह काम नहीं करती, खड़ी रह जाती है !]

दूसरा तरुण मजदूर : (खोदना बन्द कर) राजपुत्तर नहीं पर आदमी बोल रहा है !

मेट : (और जोर से कहकहा लगा) आदमी ! (फिर कहकहा लगाकर) आदमी नहीं बोल रहा है मच्छर भनभना रहा है।

पहला मजदूर : (जोर से) देखो भाइयो ! मेरी औरत पर मेट ने हाथ चलाया है।

[कई मजदूर काम बन्द कर उसकी तरफ आते हैं। कोलाहल होता है। मेट गले में पड़ी हुई सीटी बचाता है। टैण्ट में से लक्ष्मीदास और उसके साथ बन्दूकें लिए दो सिपाही निकलते हैं। लक्ष्मीदास की उम्र करीव चालीस वर्ष की है। वह गेहुएं रंग का कुछ ठिगना और कुछ साधारणतया मोटा मनुष्य है। बड़ी-बड़ी काली मूछें हैं, जिनकी नोकें "पोमेड" लगाकर खड़ी की गई हैं। लिबास अंग्रेजी ढंग का है।]

लक्ष्मीदास : (जोर से) क्या हुआ ?

मेट : (नजदीक आकर) सरकार, ये मजदूर बलवे पर उतारू हैं।

लक्ष्मीदास : बलवा ! बलवा !

पहिला मजदूर : हुजूर इस मेट ने मेरी औरत . . .

लक्ष्मीदास : (बाकी मजदूरों को नजदीक आते देख चिल्लाकर) एक आदमी बात कर रहा है, तुम सब अपने-अपने काम पर क्यों नहीं जाते ?

पहला मजदूर : सरकार, सात समुद्र पार मेरी औरत की बेइज्जती हुई है। जब तक इसका इन्साफ न होगा तब तक कोई हिन्दुस्तानी काम पर न जायगा।

लक्ष्मीदास : (गंभीरता से) ऐसा ! (कुछ रुककर सिर हिलाते हुए) ठीक (डाँट कर) तब तो तुम लोग सचमुच ही बलवा करने पर उतारू हो ?

पहला मजदूर : बलवा हम क्या करेंगे, सरकार . . . पर . . .।

लक्ष्मीदास : (बीच ही में जल्दी से) नहीं, नहीं ठहरो (डेरे में जाते हुए) सिपाहियो ! तुम लोग यहीं रहना।

[लक्ष्मीदास टेण्ट में जाता है। सब जैसे के तैसे खड़े रहते हैं। मजदूर एक दूसरे की तरफ देखते हैं। लक्ष्मीदास जल्दी से एक बड़ा सा चाबुक लेकर आता है।]

लक्ष्मीदास : (चाबुक को सटकाकर जोर से गरज) बोलो, जाते हो काम पर या इस सुल्तान दूल्हे से खबर लूं ? (लोगों को काम पर जाते न देख) गोली भी चलेगी...याद रखना।

[कुछ लोग काम पर लौटते हैं, कुछ पहले मजदूर की तरफ देखते हैं। लक्ष्मी दास पहले मजदूर पर चाबुक चलाता है। वह पिटने पर भी वैसा का वैसा खड़ा रहता है। उसकी औरत उसके बचाव के लिये बीच में आ जाती है। वह औरत को हटाकर बचाने का प्रयत्न करता है। औरत पर भी चाबुक लगते हैं। दो मजदूरों को छोड़ शेष सब काम पर चले जाते हैं। लक्ष्मीदास के इशारे पर सिपाही आकाश में फायर करते हैं एक मजदूर और चला जाता है। सिर्फ पहला और दूसरा मजदूर और पहले मजदूर की औरत रह जाती है। बन्दूकों की आवाज सुन अचला डेरे के बाहर निकलती है। अचला लगभग छः वर्ष की गौर वर्ण की सुन्दर बालिका है। वह अंग्रेजी ढंग का फ्राक पहने है।]

लक्ष्मीदास : (गरज कर) जाते हो काम पर या और पिटोगे ? (तीनों को न जाते देख तीनों पर जोर-जोर से चाबुक चलाते हुए) सुअर के बच्चो ! शैतानो !

[औरत चिल्लाती है, अचला दौड़कर नजदीक आती है।]

अचला : पिता जी !...पिता जी ! मत...मत मारिये...मत मारिये...पिता जी।

[डेरे से अचला की आया आती है।]

लक्ष्मीदास : (और जोर से मारते हुए) आया, ले जा इसे अन्दर।

[अचला रोती है। आया जबर्दस्ती उसे टेन्ट में ले जाती है।]

लक्ष्मीदास : (पहले मजदूर की गर्दन पकड़ उसे जोर से एक पत्थर पर ढकेलते हुए) बदजात ! बलवाई !

[वह मजदूर पत्थर पर गिरता है। उसका सिर फूटता है। खून बहता है।

उसकी औरत तथा दूसरे मजदूर उसके निकट दौड़ते हैं। एक ऊँचे मोटे ताजे अंग्रेज का प्रवेश।]

अंग्रेज : वैल, मिस्टर लक्ष्मोडैस ! हाऊ वर्क इज़ गोइंग ऑन।

लक्ष्मीदास : (चाबुक को फेंक जल्दी अंग्रेज के पास आ, उसे सलाम करते हुए) वेरी वैल सर, वेरी वैल सर !

अंग्रेज : (दूरबीन से फार्म को चारों तरफ देखते हुए) ओ यस ! स्प्लैनडिड ! वेरी गुड प्रोग्रेस इन्डीड। इसी टरा काम हुआ तो ठोड़ा दिन में आफ्रिका का ये नैटाल रंग-बीरंगा गार्डन कालोनी हो जायगा। कोई जानवर काम करे टो यहाँ जीटा नेई, न बैल, न घोड़ा, और मशीन भी नेई। जानवर और बिना किसी मशीन के हाट से ऐसा काम हिन्दुस्टानी ही कर सकटा।

(गिरे हुए मजदूर की तरफ देखकर) और इसको क्या हुआ ?

लक्ष्मीदास : इस...इस...इसको सर ! ...इसने पत्थर पर सिर पटक कर खुदकुशी की कोशिश की है।

अंग्रेज : (आश्चर्य से) खुदकुशी ! हिन्दुस्टान का क्या याद आ गिया ? इतना मजदूरी मिलटा ! (फिर उस मजदूर की तरफ देख) वो औरट उसका ?

लक्ष्मीदास : जी, सर।

अंग्रेज : फिन...फिन हिन्दुस्टान का याड का क्या बाट, औरट भी येई।

[अंग्रेज लक्ष्मीदास की ओर और लक्ष्मीदास अंग्रेज की ओर देखता है।]

—यवनिका—

पहला अङ्क

पहला दृश्य

स्थान : डरबन में लक्ष्मीदास के आलीशान मकान में अचला का कमरा।

समय : सन्ध्या।

[उपक्रम की घटना को बारह वर्षों का एक युग बीत चुका है। अत्यन्त विशाल कमरा है। पश्चिमी ढंग से सुन्दरता से सजा हुआ है। दीवाल पर कई आयल पेन्टिग हैं। छत में बिजली के झाड़ और पंखे झूल रहे हैं। जमीन के मोटे कालीन पर ड्राइंग रूम का बहुमूल्य फरनीचर है। छत रंगी हुई है। दीवाल में कई दरवाजे और खिड़कियाँ हैं। दरवाजे और खिड़कियों में फूलदार काँच लगे हैं। दाहिनी तरफ की दीवाल का एक दरवाजा बायें रूम में खुलता है। वाँई ओर की दीवाल का एक दरवाजा संगमरमर से पटी हुई अपटूडेट सीढ़ियों पर जिससे जान पड़ता है कि कमरा दुमंजिले या तिमंजिले पर है। जो सीढ़ियाँ दीखती हैं वे कालीन से मढ़ी हुई हैं। खिड़कियों से दूर पर डरबन का समुद्र तट और कई बन गई तथा बनती हुई इमारतें दीख पड़ती हैं। बाहर के दृश्य से पता लगता है कि शहर बनने की अवस्था में हैं। एक सोफा पर युवती अचला बैठी हुई गा रही है। उसकी अवस्था अब १८ वर्ष के कुछ ऊपर है। गौर वर्ण में सुन्दरता निखर गई है। वेशकीमती साड़ी और ब्लाउज पहिने हुए है। पैरों में ऊँची एड़ी के जूते हैं। आभूषण जगमगाते हुए रत्नों से जड़े हैं।]

गान

खोजता था क्या ये न क्षण?

पूर्णता लेकर उदित हो आत्मविस्मृति एक चिन्तन
क्यों विफल सा हो विकल अब रूठता तू रे चपल मन
कल्पना की तूलिका का देखता है मधुर अंकन
क्यों लगाता होड़ इनसे ये अकिञ्चन श्रान्त लोचन

ढल पड़ीं दो चार बूँदें लुट गया यदि मान का धन
जीत भी फिर हार तेरी सफल हो या विफल अर्पण

[सीढ़ियों पर चढ़ते हुए विद्याभूषण का प्रवेश। वह करीब २३ साल का युवक है। वर्ण गौर है, शरीर ऊँचा तथा गठा हुआ, मूछें मुड़ी हुई हैं, यानी यह क्लीन शेव्ड है। अंग्रेजी ढंग के कपड़े पहने हुए है। विद्याभूषण टोप उतारते और अचला का अभिवादन करते हुए आगे को बढ़ता है]

अचला : (जल्दी से उठ, विद्याभूषण की ओर बढ़ अत्यन्त प्रसन्नता से) ओ विद्याभूषण! तो आखिर मेरा पत्र तुम्हें खींच ही लाया।

[दोनों सोफा पर बैठते हैं।]

विद्याभूषण : (लम्बी साँस लेकर) यहां था, मिस अचला, इसलिये।

अचला : (बेचैनी से) क्या डरबन से कहीं बाहर जा रहे हो?

विद्याभूषण : आफ्रिका ही छोड़ रहा हूँ, मिस अचला।

अचला : (आश्चर्य से) आफ्रिका छोड़ रहे हो! फिर योरप जाओगे?

विद्याभूषण : योरप कहाँ से जाऊँगा, वह तो स्कालरशिप मिल गई थी, इससे योरप में पढ़ लिये।

अचला : फिर?

विद्याभूषण : हिन्दुस्थान जा रहा हूँ।

अचला : हिन्दुस्थान जा रहे हो; मातृभूमि के दर्शन करने?

विद्याभूषण : नहीं, नहीं, रहने को मिस अचला।

अचला : वहीं रहोगे?

विद्याभूषण : हां (फिर लम्बी सांस लेते हुए) अब यहां रहा नहीं जाता।

अचला : (एकटक विद्याभूषण की तरफ देखते हुए) बचपन से जहां रहे हो, वहां रहा नहीं जाता?

विद्याभूषण : (व्यंग से मुसकराते हुए) अब तरुण जो हो गया हूं।

अचला : जहां बच्चा बड़ा होता है, बुढ़ापे तक भी वहीं रहता है।

विद्याभूषण : और मर भी जाता है।

अचला : (हँस कर) और मर कर फिर पैदा होता है।

विद्याभूषण : सो तो मैं नहीं जानता, पर मर जरूर जाता है। जितना निश्चित मरना है उतनी कोई दूसरी बात नहीं।

अचला : जितना निश्चित मरना है, उतना ही फिर जन्म लेना भी है, मिस्टर विद्याभूषण ?

विद्याभूषण : (कुछ सोचते हुए) शायद बूढ़े होकर मरने के बाद। और यदि कोई जवान ही मर जाय ? मिस अचला, मैं जवानी ही में नहीं मरना चाहता।

[अचला जोर से हँस पड़ती है। विद्याभूषण मुस्कराते हुए अचला की तरफ देखता है, पर उसकी मुसकराहट में दुख का मिश्रण है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

अचला : (गंभीरता से) एक बात जानते हो ?

विद्याभूषण : क्या ?

अचला : तुम्हारे भारत जाने पर मैं यहाँ न रह सकूँगी।

विद्याभूषण : (कुछ आश्चर्य से) तुम यहां न रह सकोगी ?

अचला : (गंभीरता से) हां, मैं यहां न रह सकूँगी ? जब तुम योरप में थे तब तुम्हारे लौटने की प्रतीक्षा में मैं यहां थी। यहां रहते हुए भी जब नहीं आते हो, तलमला उठती हूं। पत्र पर पत्र लिख कर तुम्हें बुलाती हूँ। जन्मभूमि के दर्शन कर लौट आओ तो तुम्हारी गैरहाजिरी का समय शायद रो गाकर काट लूं। पर..पर..विद्याभूषण तुम्हारे सदा के लिये यहां से जाने पर..मैं..मैं.. कभी...कभी नहीं रह सकती (कुछ रुक कर) क्यों मुझे इतना जलाते हो ? क्यों मुझे इतना तड़फाते हो ? (आँखों में आँसू भर आते है)

विद्याभूषण : एकटक अचला की ओर देखते हुए लम्बी साँस लेकर) और तुम समझती हो, प्यारी अचला, मुझे तुम्हें इस तरह जलाने और तड़फाने में कोई सुख मिलता है।

[अचला कोई उत्तर न देकर एकटक विद्याभूषण की ओर देखती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

विद्याभूषण : (धीरे धीरे) मिस अचला, जितनी जलन, जितनी तड़फ तुम्हारे हृदय में है, उससे कम मेरे दिल में नहीं। अगर मेरे वियोग में तुम्हें विह्वलता होती है तो तुम्हारी जुदाई में मुझे कोई आनन्द नहीं मिलता। तुम्हारे बुलाने

के पत्र, और पत्र ही नहीं उनकी एक-एक पंक्ति, शब्द, अक्षर, मात्रा मेरे हृदय को बरछी की तरह भेदते हैं। यह न समझना कि मैं तुमसे अपनी खुशामद कराना चाहता हूँ। जब तुम इस प्रकार मेरी खुशामद करती हो तब मैं शर्म से जमीन में गड़ जाता हूँ। मुझ सदृश गली-गली मारे-मारे फिरने वाले व्यक्ति पर आफ्रिका के भारतीयों के सरताज करोड़पति की पुत्री...

अचला : बस...बस...बहुत हुआ। यदि मेरा क्वालिफिकेशन एक करोड़पति की पुत्री होना है तो...

विद्याभूषण : (बीच में ही) नहीं नही, तुम मुझे गलत समझ रही हो मेरा यह मतलब नहीं था। तुमने जब अपने हृदय को खोलकर रखा है तो मेरे दिल की भी पूरी बात न सुनोगी?

अचला : कहो!

विद्याभूषण : मैं कह रहा था मेरे सदृश एक निर्धन मनुष्य को तुम्हारे सदृश अगर अचला इतना चाहती होती तो वह अपने को कितना सौभाग्यशाली मानता, पर मेरा दुर्भाग्य तो देखो, मेरे दुख का यही सबसे बड़ा सबब है।

अचला : मेरा प्रेम तुम्हारे दुख का कारण है?

विद्याभूषण : हां, मिस अचला, और इसलिये नहीं कि मेरे हृदय में तुम्हारे लिये प्रेम नहीं है, मैं कह चुका हूँ और विश्वास मानो, जितना तुम मुझे चाहती हो, उससे रत्ती भर भी, बाल बराबर भी मैं तुम्हें कम नहीं चाहता, पर...पर... अचला...(चुप हो जाता है)

अचला : हां, चुप क्यों हो गये, कहे चलो?

विद्याभूषण : अचला, तुम्हारा और मेरा यह सम्बन्ध रह नहीं सकता, तुम्हारा और मेरा विवाह सम्भव नहीं, इसीलिये मैं हमेशा के लिये यह देश छोड़कर चला जाना चाहता हूँ। योरप से लौटने वाला था। वहां भी तुम—सदा तुम दृष्टि में घूमती थीं, तुम्हारा...हमेशा तुम्हारा मधुर स्वर कानों में गूँजता था। हिन्दुस्थान में भी पहिले यही...शायद यही होगा, पर लौट कर न आने की प्रतिज्ञा कर जाऊँगा। अपनी साहित्य-सेवा में लगूँगा। तुम्हें भूलने की कोशिश करूँगा। मैं मरना नहीं चाहता...मिस अचला, जीना चाहता हूँ। और वह इसलिये कि मेरी बुद्धि एक ही जन्म मानती है।

अचला : (भर्राते हुये स्वर में) और मेरा क्या होगा ?

विद्याभूषण : तुम्हारा. . .तुम्हारा, अचला ? मुझे भूलना न चाहोगी तो भी समय मुझको भुलवा देगा। तुम्हारे पिता किसी करोड़पति से तुम्हारा विवाह कर देंगे। शुरू में शायद उस विवाह से तुम्हें सुख न मिले, पर जीवन, सुना. . . चलता हुआ बहता हुआ जीवन धीरे-धीरे तुम्हें सुखी बना देगा।

अचला : (लम्बी साँस लेकर) तब तुमने अचला को पहिचाना नहीं, विद्या-भूषण। तुम अपनी साहित्य-सेवा में मुझे शायद भूल सको, लेकिन मैं. . .मैं. . . (गला रुँध जाता है अतः कुछ ठहर कर) पर विद्याभूषण, तुम्हारा और मेरा. . . तुम्हारा और मेरा विवाह सम्भव क्यों नहीं है ? तुम अति निर्धन हो और मैं धन-वान हूँ, इसलिये ? तुम कदाचित अभी भी नहीं जानते कि पिता जी का मुझ पर कितना स्नेह है। मैं ही उनकी सब कुछ हूँ, एकमात्र सन्तान। अगर उन्हें मालूम होगा कि तुम्हारे संग विवाह किये बिना मैं जीवित नहीं रह सकती तो वे अप्रसन्न होकर नहीं, खुशी से मेरा यह विवाह मंजूर कर लेंगे। मैं ही उनकी सारी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी हूँ। विवाह के बाद जब मैं ही तुम्हारी हो जाऊँगी, तब यह सम्पत्ति भी तुम्हारी ही होगी। फिर निर्धनता का सवाल ही कहां रहता है ? (कुछ रुक कर) और पिता जी के इस मामले को तय करना तो मेरा काम है। मुश्किल तो यह है कि तुम इस पर राजी ही नहीं होते कि मैं उनसे इस विषय पर बात करूँ। (फिर रुक कर) तुम कहते हो कि तुम्हारा मुझ पर उतना ही प्रेम है जितना मेरा तुम पर।

विद्याभूषण : तुम नहीं मानती ?

अचला : (कुछ सोचते हुए) शायद हो।

विद्याभूषण : (अत्यन्त दुखद स्वर में) शायद ! अचला ?

अचला : तो फिर तुम मुझे पिता जी से कहने क्यों नहीं देते ? मुझे छोड़ कर सदा के लिये भारत जाना तुम्हें मंजूर है, पर इस विषय में पिता जी से बात करना स्वीकार नहीं। क्या तुम समझते हो पिता जी मेरा कहना टाल देंगे ?

विद्याभूषण : नहीं !

अचला : तब !

विद्याभूषण : (कुछ रुककर) मिस अचला, इसका दूसरा सबब है और उसे

सुनकर तुम्हें दुख होगा...बहुत दुख होगा। इसीलिये मैं उसे कहना नहीं चाहता।

अचला : तो हमेशा के लिये मुझे असह्य दुख देकर चले जाना तुम्हें मंजूर है, पर उस कारण का कहना नहीं। यह एक ताज्जुब...बड़े ही ताज्जुब की बात है। (कुछ रुककर) तुम्हें कहना होगा, विद्याभूषण, अवश्य कहना होगा। शायद उस अड़चन का कोई रास्ता निकल आये?

[अचला एकटक विद्याभूषण की ओर देखती है। विद्याभूषण सिर झुका लेता है। कुछ देर निस्तब्धता।]

अचला : (विद्याभूषण के कंधे पर हाथ रखकर एकटक उसे देखते हुए) कहो, प्यारे भूषण, अवश्य कहो। (गिड़गिड़ाते हुये) इतना जुल्म...इतना जुल्म मुझ पर न करो।

विद्याभूषण : (सिर उठाते हुए अचला की तरफ देख भर्राते हुए स्वर में) सुनोगी ही अचला।

अचला : अवश्य...अवश्यमेव।

विद्याभूषण : तो सुनो, परन्तु देखो, मुझे क्षमा करना।

अचला : यह कहने की जरूरत नहीं।

विद्याभूषण : (अचला की ओर से दृष्टि हटा सामने की तरफ देखते हुए जल्दी-जल्दी) अचला जो सम्पत्ति तुम्हारी जीविका, तुम्हारे सुखों का कारण है और जिसका तुम्हें उत्तराधिकार मिलने वाला है, उस सम्पत्ति का उपार्जन किस तरह हुआ है, यह मैं जानता हूँ। उसे जानते हुए उस सम्पत्ति से जीविका चलाने वाली, उससे सुख भोगने वाली, उसका उत्तराधिकार पाने वाली तुम को, अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय होने पर भी, मैं पत्नी नहीं बना सकता।

[अचला ठिठकी सी रह जाती है, पर विद्याभूषण की ओर ही देखती रहती है। विद्याभूषण अचला की तरफ देखता है, पर उसे अपनी ओर देखते हुए देख जल्दी से दृष्टि हटा, दूसरी तरफ देखने लगता है। वह बार-बार लम्बी सांसें लेता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

अचला : (भर्राते हुए स्वर में) पिता जी ने इस सम्पत्ति को बुरे मार्गों से पैदा किया है।

विद्याभूषण : मैं इस विषय पर वाद-विवाद नहीं करना चाहता, अचला।

(फिर कुछ देर निस्तब्धता)

अचला : (विचारते हुए गम्भीरता से) तो तुम चाहते हो कि मैं इस जीविका को, सारे सुखों को छोड़ दूं। इस उत्तराधिकार से हाथ धो डालूं।

[विद्याभूषण कोई उत्तर न देकर सिर्फ अचला की ओर देखने लगता है। उसकी दृष्टि में एक विचित्र प्रकार की उत्सुकता है। अचला सिर झुका लेती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

अचला : सिर उठा कर विद्याभूषण की तरफ देख जल्दी-जल्दी) विद्याभूषण, तुम्हारी अचला, इस सम्पत्ति,...इस छोटी सी सम्पत्ति क्या सारे संसार की सम्पत्ति के भी, अपने प्रेमी के लिये, त्यागने की शायद क्षमता रखती है। इस अमीरी को छोड़ गरीबी का अभिमान करने की उसमें हिम्मत है, पर...पर, प्यारे भूषण...(चुप रह जाती है)

विद्याभूषण : (अचला की तरफ देखते हुए) पर...पर, अचला?

अचला : (रुँधे हुए गले से) पिता जी...पिताजी का क्या होगा? तुम जानते हो...तुम जानते हो, मेरे सिवा उनका और कोई नहीं है। उनका मुझ पर कितना...कितना स्नेह है, और मैं...मैं भी उन्हें,...उन्हें कितना चाहती हूँ...यह तुम से छिपा है?

विद्याभूषण : (लम्बी साँस लेकर) नहीं, इतना ही नहीं, मैं यह भी जानता हूँ कि त्याग की तुम में क्षमता होते हुए भी, तुम में अत्यधिक हिम्मत होते हुए भी, इस महान अमीरी जीवन के हमेशा के अभ्यास होने के कारण, गरीबी का जीवन तुम्हें कितना कष्टप्रद होगा। इन्हीं सब कारणों से मैंने कहा न कि मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध, तुम्हारा और मेरा विवाह, मुमकिन नहीं और इसीलिये, अचला, मैं सदा को यहां से चला जाना चाहता हूँ।

[अचला कोई उत्तर न देकर सिर झुका लेती है। कुछ देर फिर निस्तब्धता रहती है।]

अचला : (धीरे-धीरे सिर उठाते हुए) देखो भूषण, एक रास्ता निकल सकता है।

विद्याभूषण : (उत्सुकता से) क्या?

अचला : अभी तुम इस सवाल को न उठाओ। मैं पिता जी को इस विवाह के लिये राजी कर लूँगी। उनके...उनके बाद इस उत्तराधिकार को जिस कार्य में तुम कहोगे मैं लगा दूँगी।

विद्याभूषण : और तब तक...तब तक, तुम मेरी पत्नी रहते हुए इसी सम्पत्ति से अपनी जीविका चलाओगी और सारे सुखों को भोगोगी और तुम्हीं.. तुम्हीं ..क्या मैं भी बिना किसी श्रम के इसमें अलमस्त रहूँगा?

[अचला सिर झुका लेती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

अचला :(सिर उठाते हुए) पर...पर...भूषण, पिता जी पिता जी तुम्हारे इन सिद्धांतों को नहीं समझ सकते, और मेरे...मेरे बिना वे जीवित नहीं रह सकते।

विद्याभूषण : वे इन सिद्धान्तों को नहीं समझ सकते यह मैं मानता हूँ, पर जीने मरने का सवाल न उठाओ, अचला।

अचला : क्यों! तुम समझते हो उनका मुझ पर इतना स्नेह नहीं है?

विद्याभूषण : इस बात को छोड़ दो, अचला, तुम देवी हो, यह मैं मानता हूँ। पर वे...वे...क्या कहूँ?

अचला : (भर्राये हुए स्वर में)कहो कहो, आज तो कहना ही होगा, पूरी बात कहो।

विद्याभूषण : (विचारते हुए) हां, शायद कहना ही होगा, यह मैं भी मानता हूँ। अचला, तुम देवी हो, पर वे मनुष्य भी नहीं। आ हा उन्होंने...उन्होंने अपने विदेशी प्रभुओं के लिये...अपने खुद के लिये कौन सा ऐसा पाप है जो न किया हो? अपने देशवासियों को मनुष्य नहीं पशु...पशु...नहीं, कीड़े-मकोड़े और कीड़े-मकोड़े ही नहीं निर्जीव मशीनें, लकड़ी, पत्थर समझा। उन्हें ऐसे कौन से कष्ट हैं जो न दिये हों? उन्हें भूखा रखा, नंगा रखा, उन्हें मारा पीटा, उनके खून तक किये, औरतों बच्चों तक को न जाने क्यों...क्या(जल्दी से) जाने दो, जाने दो, ये ऐसा..ऐसा मनुष्य...मनुष्य कहूँ या क्या कहूँ, दुनिया में किसी पर स्नेह, प्रेम कर सकता है? उसके वियोग में मर सकता है? यह कल्पना... कल्पना की चीज हो सकती है?

अचला : (कुछ दृढ़ता से) पिता जी ने क्या किया है और क्या नहीं यह मैं

नहीं जानती, पर. . .पर, भूषण, मुझ पर उनका स्नेह नहीं, यह मैं नहीं मानती मुझ पर उनका अगाध प्रेम है, यह मैं जानती हूँ, तुम नहीं, और इसीलिये मुझे यह भी मालूम है कि वे मेरे बिना जीवित नहीं रह सकते।

विद्याभूषण : (बेपरवाही से) मुमकिन है कि तुम्हारा ही सोचना ठीक हो। (कुछ रुक कर) और इसीलिए तो मैं अब इजाजत चाहता हूँ।

[अचला फिर सिर झुका लेती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

अचला :(एकाएक रोते हुए) विद्याभूषण, विद्याभूषण, तुम मुझ पर जुल्म . . . भयानक जुल्म कर रहे हो।

विद्याभूषण : (लम्बी साँस लेकर) मैं चाहता हूँ, मैं ऐसा पाप न करूँ। इसीलिये, इसीलिये तो हमेशा के लिये यह देश छोड़ देना चाहता हूँ।

अचला : (आंसू पोंछते हुये भर्राये स्वर में) मैं जो कुछ कह सकती थी, मैंने सब कुछ कह दिया, विद्याभूषण! यह न जानते हुये कि इस सम्पत्ति का उपार्जन कैसे हुआ है, तुम्हारी इच्छा है तो पिता के बाद सारे उत्तराधिकार को, इस समस्त सम्पत्ति की फूटी कौड़ी भी न रक्खूँगी, जो काम कहोगे वह करूँगी। इस सारी अमीरी को छोड़ बड़ी से बड़ी गरीबी में जिन्दगी बसर करूँगी। अभी मुझसे लिखा पढ़ा लो, पर उसे पिता जी के जीवन तक गुप्त रखो।

विद्याभूषण : (घृणा से मुसकरा कर) असम्भव बातें करती हो, अचला!

अचला :(कुछ क्रोध से) असंभव बातें, असंभव बातें? तब. . .तब तो यह सब तुम्हारा दम्भ है, मिस्टर विद्याभूषण, सिर्फ दम्भ।

विद्याभूषण (आश्चर्य से) दम्भ मेरा दम्भ ?

[दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं]

लघु-यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान : वही

समय : दोपहर

[अचला गाती हुई बेचैनी से इधर-उधर घूम रही है। उस के मुख पर अत्यधिक उद्विग्नता दृष्टिगोचर होती है]। आँखें कुछ लाल और कुछ सूजी हुई

हैं, जिससे जान पड़ता है कि यह बहुत देर तक लगातार रोती रही है। गाते-गाते बीच-बीच में वह रुक जाती है, रोने लगती है। रोते-रोते दो चार शब्द या वाक्य गद्य में कह, आँसू पोंछ फिर गाने लगती है। कभी सोफा, कभी कुर्सी, कभी टेबिल पर बैठ जाती है। कभी-कभी खिड़कियों और दरवाजों से बाहर देखती है, और कभी सीढ़ियों की तरफ।]

गाना

अनजाने में तू आया
भोले नयनों ने, अपने में, मन में तुझे बसाया
खेल न पाई हिल मिल तुझ से सुख की अल्हड़ छाया
प्राणों ने पाली उत्सुकता भोलेपन ने माया
नयन नीर से आर्द्र नींद को चिन्ता का जग भाया
उसका भारीपन तापित हो उछ्वासें भर लाया
रे कह किसने इस धरती में जो चाहा सो पाया
रे आनुराग अतिथि हो तूने कितना मुझे सिखाया

अचला : हां. . .हां. . .उस. . .उस दिन. . .उस. . .उस. . .आदमी. . . और. . .और. . .औरत को भी. . .मारा. . .मारा जरूर था। चा. . .चाबुक से।. . .चाबुक. . .चा. . .बुक को वे सुल्तान सुल्तान दूल्हा. . .हां. . . हां. . .सुल्तान दूल्हा कहते थे। वह. . .वह औरत रोती, हां. . .हां बुरी तरह रोती और रोती ही नहीं. . .चिल्लाती. . .तड़फती हुई. . .बिलखती हुई चीखती थी।. . .तो यह संपत्ति. . .सारी. . .सम्पत्ति उन्हीं. . .उन्हीं आँसुओं. . .उसी तरह. . .उसी तरह और भी न जाने कितनी अश्रुधाराओं की. . .आँसुओं की नदियाँ. . .और. . .और वही बिलख. . .वही तड़फ. . . और भी. . .और भी न जाने कितनी वैसी. . .वैसी ही भयानक बिलखों तड़फों से बनी है? और खून. . .आह! क्या खून. . .खून से. . .खून से भी सनी है? (बड़ी जल्दी-जल्दी इधर उधर टहलते हुए कुछ देर चुप रहने के बाद) पर. . .पर मुझे इससे क्या?. . .मेरा इस से क्या सरोकार?. . .पिता. . . जी. . .पिता जी से मुझे मतलब है। उन का. . .उन का मुझ पर कितना स्नेह कैसा अगाध प्रेम है?. . .मेरे कारण ही उन्होंने. . .दूसरी शादी. . .दूसरी

शादी नहीं की।...कोई नौकर...हां, कोई नौकर भी किसी की इतनी खिदमत न करेगा, जितनी उन्होंने मेरी...मेरी की है...और वह भी न जाने कितनी आया लोगों...कितने नौकरों के रहते। आज...आज भी मेरे बिना नहीं खाते। कहीं...कहीं बाहर नहीं जाते।...ऐसे पिता को मैं छोड़ दूं ?...सम्पत्ति छोड़ सकती हां...हां उसे ठोकर...उसे लात मार सकती हूँ...एक मिनिट...एक सेकन्ड में...पर पर...पिता... पिता जी को उनके जीते जी...छोड़ दूं, एक तरह से उनकी हत्या...उनका खून करूँ ?...(एकाएक सोफा पर बैठ सामने की टेबिल...पर दोनों कुहनियां रख कर कुछ देर चुप रहने के बाद) पर...पर...फिर... भूषण...भूषण...उसे...उसे...भी तो नहीं...नहीं छोड़ा जाता।... आह !...आह !...मैं तो पागल हो जाऊँगी...इस तरह...इस तरह... इस प्रकार तो मर...मर...(फूट फूटकर रो पड़ती है।)

[सीढ़ियों से जल्दी-जल्दी लक्ष्मीदास का प्रवेश। उस की उम्र अब ५२ वर्ष की है पर वह ६० वर्ष से अधिक का दिखता है। बाल तीन चौथाई सफेद हो गये हैं। मूछों पर अब पोमेड नहीं है। आँखों पर चश्मा है। और पोशाक अंग्रेजी ढंग की है।]

लक्ष्मीदास : (आते आते घबराहट के स्वर में) क्यों बेटा, रसोइये ने कहा कि तुम आज भोजन नहीं करोगी, कैसी तबीयत है ?

[अचला शीघ्रता से उठ जल्दी से आंसू पोंछ पिता की ओर बढ़ती है।]

लक्ष्मीदास : (अचला की तरफ गौर से देखते हुए और भी घबराकर) हैं, क्या बात है, बेटा तू तो रो रही है, क्या बात है, क्या बात है...(अचला के सिर सिर पर हाथ फेरता है।)

अचला : (गले को साफ कर स्वाभाविक स्वर में बोलने की कोशिश करती है पर इतने पर भी स्वर में भर्राहट है।) कुछ नहीं, पिता जी, यों ही।

लक्ष्मीदास : (ठोड़ी पकड़ अचला का सिर ऊँचा करते और उसका मुख नजदीक से देखते हुए) यों ही, यों ही कैसे बेटी, रोया यों ही नहीं जाता, और देखो तो, आँखें कैसी हो गई हैं ? बेटा, तुम तो बहुत रोई दिखती हो। चेहरा एकदम उतरा हुआ है। क्या बात है, बेटी, क्या बात है ? (सोफा पर बैठ, अचला

को खींच अपने पास बैठाते हुए) बेटी, तेरे आँसू देखकर मुझ से खड़ा ही नहीं रहा जाता, पैर काँपते हैं बेटा, चक्कर आता है।

अचला : (लक्ष्मीदास की तरफ देखते हुए) पिता जी, पिता जी, आप मुझे कितना चाहते हैं।

लक्ष्मीदास : तुम्हें चाहता हूँ, कोई ताज्जुब की, अचरज की बात है? तुझे न चाहूँगा तो और किसे चाहूँगा? बेटी, मुझे एक आँख से सारा संसार सूझता है। तुम्हीं, बेटा, मेरा सब कुछ तुम्हीं तो हो।

अचला : पिता जी मेरे आँसू देखकर आप के पैर काँपते हैं. आपको चक्कर आतें हैं?

लक्ष्मीदास : सो तो होना ही चाहिए, किसी-किसी को खून देखकर भी चक्कर नहीं आ जाता? मुझे शायद सारे संसार का खून देखकर चक्कर न आयेगा, उसकी नदियाँ देखकर भी नहीं, पर, बेटा, तेरे आँसुओं की दो बूंदें, हां, दो बूंदें मेरे पैर कँपाने के लिए, अरे! मुझे बहा तक देने के लिए काफी हैं।

अचला : (गम्भीरता से) मेरे दो बूंद आँसुओं में सारे संसार के खून से भी ज्यादा ताकत है, पिता जी?

लक्ष्मीदास : मेरे लिए.....मेरे लिए तो है, बेटी, (कुछ रुक कर) पर यह तो बता इन आँसुओं का सबब....सबब क्या है?

अचला : (सिर झुकाकर) कुछ नहीं, पिता जी, यों ही...(चुप हो जाती है।)

लक्ष्मीदास : यों ही, फिर वही यों ही, आँसू यों ही नहीं निकला करते, बेटी!

[अचला कोई उत्तर न देकर चुप रहती है, पर उसके मुंह से एक गहरी साँस निकलती है।]

लक्ष्मीदास : हें! लम्बी साँसें भी ले रही है, इतना रोई भी है!

अचला : लम्बी साँसें, मैंने लम्बी साँस ली, पिता जी?

लक्ष्मीदास : लम्बी साँस, लम्बी साँस लेने वाले को पता न लगने पर भी निकल जाती है। (घबड़ाहट के स्वर में) बेटा, क्या हुआ है, क्या हुआ है? बताओ...बताओ, बेटा, मेरा कलेजा मुँह को आरहा है। मेरा दम घुट रहा है।

(अचला का कोई उत्तर न सुनकर उसकी ओर देखते हुए) विद्याभूषण से कोई झगड़ा हुआ ?

[अचला कुछ नहीं कहती, पर उसके लाख प्रयत्न करने पर भी आँसू नहीं रुकते और झरझर बह पड़ते हैं।)

लक्ष्मीदास : (अचला के सिर पर हाथ फेरते हुए) समझा, समझा, बेटी कुछ दिनों से समझने लगा था। प्रेम, सुगन्धि, धुआँ और खाँसी, ये छिपाने से नहीं छिपते, पर आज साफ-साफ समझ गया। (लम्बी साँस लेकर) कोई बात नहीं, मैं तो यही चाहता था, किसी बड़े घर में, किसी राजा महराजा के यहाँ तुम्हारा विवाह करूं। तुम्हारे सदृश रुपवती कन्या के लिए, जिसके पास दुनियां में जितनी अधिक से अधिक संपत्ति हो सकती है, हो, उससे विवाह करने में कौन अपने को खुशकिस्मत न समझेगा? कोई भी बड़े से बड़ा आदमी, राजकुमार, तुम्हारे लिए पैरों के बल नहीं, सिर के बल दौड़ेगा, पर कोई बात नहीं, अगर तुम्हारा उसी पर प्रेम है तो मैं उसी से तुम्हारा विवाह कर दूँगा। बेटा, तुम्हारे सुख, तुम्हारी प्रसन्नता से ज्यादा मेरे लिए क्या है ? कई बार ऐसा होता है कि जो भिखारी बनकर आता है वह सर्वस्व का अधिकारी हो जाता है। और...और मैं... जानता हूं, स्त्री के लिए वही पुरुष सब से अच्छा है, जिस पर उसका प्रेम हो। (कुछ कह कर) छोड़ो इस रंज को, चलो, मुंह धो, भोजन करो। मैं अभी उसे बुलवाकर उससे बात करता हूँ।

[अचला के आँसू और वेग से बहने लगते हैं।]

लक्ष्मीदास : (आश्चर्य में) हैं ! अब क्यों...अब क्यों? ... और कोई....और कोई बात है ? बता, बेटी, बात...तुझे इस बूढ़े पर दया नहीं आती ?

[अचला अपनी दोनों भुजाएँ लक्ष्मीदास के गले में डाल कर उसके कन्धे से अपना सिर टिका लेती है।]

लक्ष्मीदास उस के सिर पर अपना हाथ फेरता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है। अचला के आँसू रुक जाते हैं।]

अचला : (भर्राते हुए स्वर में) पिता जी, कितने...कितने अच्छे हैं, आप.......

लक्ष्मीदास : (अचला के सिर पर हाथ फेरते हुए) अच्छा हूँ, बेटा, मैं अच्छा हूँ ?

अचला : दुनिया में सब से अच्छे, पिता जी।

लक्ष्मीदास : (आँसू भरकर) अच्छा, बुरा, जैसा हूँ, तुम्हारा हूँ।

[दोनों कुछ देर तक उसी तरह बैठे रहते हैं। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

लक्ष्मीदास : अच्छा, तो अब चलो। भोजन कर लो। भोजन के बाद ही मैं पंडित जी को बुला कर विवाह का मुहूर्त दिखाऊँगा। फिर विद्याभूषण को बुलाऊँगा। ऐसी—ऐसी धूमधाम से शादी होगी, बेटा जैसी आफ्रिका में तो क्या, हिन्दुस्थान में भी कोई शादी न हुई होगी। आफ्रिका का एक एक भारतीय... और भारतीय ही क्या, एक-एक योरोपियन भी इस विवाह में शामिल होगा। हिन्दुस्थान से भी न जाने कितने मेहमानों को बुलाऊँगा।...एक जहाज... हाँ, पूरा एक जहाज, रिजर्व करा, वहां के लोगों को बुलाऊँगा। (आँखों में आँसू भरकर) मेरे जीवन का यही...यही तो सब से बड़ा काम...काम काम...

अचला : नहीं पिता जी मैं विवाह नहीं करूंगी।

लक्ष्मीदास : (आश्चर्य से) तू विवाह नहीं करेगी!

अचला : हां, पिता जी।

लक्ष्मीदास : विद्याभूषण से भी नहीं।

अचला : किसी से नहीं, पिता जी। (फिर रोने लगती है)

लक्ष्मीदास : (घबड़ा कर) बेटी... बेटी...क्या है ...है क्या? मेरी कुछ समझ में ही नहीं आता।

अचला : समझने की कोशिश न कीजिये, पिता जी, मैं आपकी हूँ, आप मेरे इतना...इतना ही समझना काफी है।

लक्ष्मीदास : नहीं, बेटा, इतना ही समझना काफी नहीं है। मैं कितने दिनों का? तुम्हारे दुःख का कारण समझना ही होगा, बेटा, बिना समझे मैं एक सेकेन्ड भी सुख से नहीं रह सकता।

अचला : (आँसू पोंछते हुए) पिता जी, अधिक समझने से शायद सदा दुख ही होता है।

लक्ष्मीदास : (विचारते हुए) हो सकता है, पर अगर दुख हो ही रहा हो तो बिना उसका सबब समझे वह दूर भी तो नहीं किया जा सकता।

[अचला चुप रहती है।]

लक्ष्मीदास : (एकटक अचला की ओर देखते हुए) बेटा, मैं तुम्हें दुखी नहीं. . .हरगिज नहीं देख सकता। तुम्हें. . . मेरे प्राणों की कसम है, अगर तुम मुझे इसका सच्चा कारण न बताओगी।

अचला : (जल्दी से) पिता जी, पिता जी, आपने आज तक मुझे इस तरह की कसम नहीं दिलाई।

लक्ष्मीदास : (अचला के कन्धे पर हाथ रख कर) क्योंकि मैंने आज तक तुझे ऐसा कभी दुखी नहीं देखा। तेरे एक क्षण के सुख के लिए मेरे प्राण निछावर हैं, बेटी ।(आँसू बहते हैं)

अचला : (लक्ष्मीदास की ओर एकटक देखती हुई) पिता जी, आपकी इस कसम के बाद में आप की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकती। (फिर कुछ रुक कर) पर. . .पर (चुप हो जाती है)

लक्ष्मीदास : बेटा तुम सब कुछ मुझसे खुले हृदय से कहो। बेटी मां के सामने अपना हृदय खोल सकती है। मां तो तुम्हारी तुम्हें होश आने से पहले ही चल बसी थी। मैं तो तुम्हारी मां और तुम्हारा बाप दोनों ही जो हूँ।

अचला : (लक्ष्मीदास की तरफ से दृष्टि हटा जल्दी-जल्दी, मानों कुछ उगल कर अपनी जान छुड़ाना चाहती हो) विद्याभूषण कहता है कि आपने इस संपत्ति को बुरे रास्ते से उपार्जित किया है, अतः जब तक मैं इससे अपना संबन्ध विच्छेद न करूँ, तब तक मैं उसके संबन्ध के योग्य नहीं हूँ।

[लक्ष्मीदास का हाथ अचानक अचला के कन्धे से गिर जाता है। वह खिड़की से बाहर की ओर देखने लगता है। अचला एकटक लक्ष्मीदास की तरफ देखती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

लक्ष्मीदास : (लम्बी साँस लेकर जेब में से सिगरेट केस निकाल सिगरेट जलाते हुए और बाहर की तरफ ही देखते हुए) मैं नहीं जानता था कि वह निर्धन ही नहीं, निर्बुद्धि भी है।

[फिर कुछ देर निस्तब्धता]

अचला : (लक्ष्मीदास की तरफ देखते हुए) पिता जी इस संपत्ति का उपार्जन बुरे रास्ते से हुआ है ?

लक्ष्मीदास : (अचला की तरफ देखते हुए) बुरे रास्ते और अच्छे रास्ते की परिभाषा क्या है, अचला ?

अचला : (विचारते हुए) परिभाषा ? परिभाषा ? पिता जी,...... परिभाषा....यही.....यही है, कि इसके उपार्जन के लिए आप को किसी दूसरे को कष्ट तो नही देना पड़ा है ?......किसी का......(चुप हो जाती है)

लक्ष्मीदास : कष्ट.....बिना कष्ट के दुनियां में क्या उपार्जित किया जा सकता है ? (सिगरेट का कश जोर से खींच उसे छोड़ते हुए) अगर मुझे इस सम्पत्ति के उपार्जन में दूसरों को कष्ट देना पड़ा है, तो खुद कितनी तकलीफ उठानी पड़ी है ? सिर का पसीना एड़ी तक और एड़ी का पसीना सिर तक ले जाना पड़ा है।.......

अचला : पसीना ! हां, पिता जी, पसीना.....पसीना तो आप को अपना बहाना ही पड़ा होगा। लेकिन.....लेकिन दूसरों का खून तो नहीं बहाना पड़ा ? अभी....अभी आप ने कहा था कि सारे संसार का खून बहते हुए आप देख सकते...

लक्ष्मीदास : (बीच ही में) बेटी, पसीना नहीं, मुझे अपना खून....... बहाना पड़ा है। तभी...तभी तो मैं पचास वर्ष की उम्र में ही सत्तर वर्ष का दिखता हूं। अभी से बाल सन हो गए हैं। आखों की जोत चली गई है।

अचला : (विचारते हुए) और, पिता जी, दूसरों को मारना-पीटना भी पड़ा है।.....औरतों....बच्चों.....

लक्ष्मीदास : (कुछ सोचते और सिगरट का धुंवा छोड़ते हुए) आह ! मैं समझा तुम्हें अपने छुटपन की एक घटना याद आ रही है। पर, बेटा, उस दिन... उस दिन अगर मै उन मजदूरों को....उन्हें न मारता तो मुझे वे मारने वाले थे। मारने वाले क्या मेरी जान लेने वाले थे।

अचला : (आश्चर्य से) आपकी जान लेने वाले थे ?

लक्ष्मीदास : हां, बेटी, वे बलवे पर उतारू थे। (कुछ रुक कर) और उसी दिन ही क्या कई बार ऐसे मौके आये। आत्मरक्षा में उन उपायों को काम

में न लाता, तो तुम्हारा यह अच्छा पिता न जाने कब का खत्म हो गया होता।

[अचला कोई उत्तर न देकर लक्ष्मीदास की तरफ देखती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

लक्ष्मीदास : (विचारते हुये) और फिर बेटा, मैंने जिनसे काम लिया, ज्यादा से ज्यादा मजदूरी दी। (कुछ रुक कर) इतना नहीं, उनके उपकार के लिये कितने दान किये। कितने स्कूल, कितने बोर्डिंग, कितनी अस्पतालें मेरे रुपयों से चल रही हैं।

अचला : (प्रसन्नता से) हां, पिता जी, आपका दान आफ्रिका में ही नहीं भारत में भी प्रसिद्ध है।

लक्ष्मीदास : (अचला की प्रसन्नता देख साहस से) बेटा मैंने इस संपत्ति के उपार्जन में किसी ऐसे रास्ते का उपयोग नहीं किया है जो कानून या नीति के खिलाफ हो। मैंने अगर किसी से श्रम लिया तो उसे निर्ख से ज्यादा मजदूरी दी। मैंने यदि किसी से मेहनत कराई तो खुद उससे अधिक मेहनत की। (सिगरेट का कश खींच उसे छोड़ते हुए) हिन्दुस्थान से आफ्रिका लोग धन कमाने आये, मैं भी आया, मैं किसी को जबरदस्ती नहीं लाया। कुछ असफल हुए, कुछ सफल। मैं सबसे ज्यादा कामयाब हुआ। विदेश में मेरी इस सफलता ने मेरा ही नहीं मेरे देश का सिर ऊँचा किया है। (फिर सिगरेट पी) पर जो असफल होते हैं वे सफल से ईर्ष्या करते हैं। उसकी सच्ची ही नहीं झूठी-झूठी बुराइयाँ फैलाते हैं। अपनी असफलता, सफल की अकीर्ति से ढकते हैं और इन्हीं असफलों में से अगर कोई कायबाब हो जाय, तो फिर उसका राग एकदम बदल जाता है, स्वर ही विपरीत हो जाता है (फिर एक जोर का कश खींच) विद्याभूषण साहित्य जानता होगा, रोजगार धन्धा, व्यापार बिजनेस , क्या जाने ?

अचला : और फिर अपनी कमाई में से आप दान देने के लिये बाध्य नहीं थे, आपने खुद दूसरों के उपकार के लिये जो ऐसे बड़े-बड़े दान दिये हैं।

लक्ष्मीदास : पर उन्हें भी विद्याभूषण के सदृश आदमी कहाँ देखते हैं ? विद्याभूषण निर्धन ही नहीं, निर्बुद्धि है। मैं निर्धन के साथ तुम्हारा विवाह कर सकता था, निर्बुद्धि के साथ नहीं। (कुछ रुक कर) तुम समझती नहीं, उसने तुमसे क्या कहा ? वह...वह तुमसे संपत्ति छुड़ा, तुम्हारे जीवन-पथ में काँटे....काँटे ही नहीं बोना

चाहता, पहाड़ खड़े करना चाहता है; गड्ढे....गड्ढे ही नहीं कुएँ और खंदकें खोदना चाहता है। (सिगरेट पीकर) तुम महलों में रही हो, अच्छे-अच्छे वस्त्र पहन कर, स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन कर, फूलों की सेज पर सोई हो, मोटरों पर घूमी हो, उसी तुम्हें वह झोपड़ों में नंगा, भूखा, रख गलियों में जूतियाँ चटकवा, दर-दर का भिखारी बनाना चाहता है। और...और वह निर्बुद्धि ही नहीं ईर्षालु भी है। उसे निर्धन होने के सबब धन से ईर्षा है। बेटा उसे दम्भ है, दम्भ।

अचला : हाँ, पिता जी उसे दँभ है, दम्भ। और...और सबसे...सबसे बड़ी बात यह है कि वह आप पर, मेरे अच्छे पिता पर, दुनियाँ में सबसे अच्छे पिता पर, ऐसे दानी ऐसे उदार मनुष्य पर, लांछन लगाता है। (कुछ रुक कर) और. . और आप में और मुझमें झगड़ा....झगड़ा कराना चाहता है। (फिर रुककर) पिता जी, पिता जी, वह प्रेम ....प्रेम नहीं, घृणा की चीज, घोर घृणा की चीज है।

लक्ष्मीदास : (आँखों में आँसू भर कर) बेटी! (अचला को हृदय से लगा कर, कुछ देर बाद ऐशट्रे में सिगरेट बुझाते हुए) तो चल मुँह धो डाल। भोजन कर।

[लक्ष्मीदास खड़ा होता है, अचला भी उठती है।]

लघु-यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान : वही

समय : रात्रि

[अचला सोफा पर बैठी हुई गा रही है। उसकी दशा वैसी ही है, जैसी दूसरे दृश्य में थी]

गान

गूँजे हैं ये विरस से या सरस से तार
हृदय स्पन्दन ताल प्रतिलय स्वर भरे आवेग गतिमय
एक से चल सप्त तक क्या खोजती झंकार
यदि भरी है पीर केवल बिन सुने क्यों प्राण बेकल
अधर सुस्मित क्यों नयन में नीर का संचार

राग है यह विषम या सम कब कहेगा समय निर्मम

झलकता इस झिलमिली में कौन सा संसार

अचला : घृणा . . . हाँ . . . हाँ घृणा की चीज है। लेकिन . . . लेकिन प्रयत्न करने पर भी घृणा की उत्पत्ति नहीं होती। . . . घृणा करने की कोशिश करती हूँ और प्रेम . . . प्रेम पैदा होता है, पर . . . पर . . . इससे . . . इससे लाभ ? . . .लाभ ? लाभ हानि तो रोजगार धन्धे,. . .हाँ . . . व्यापार—बिजनैस में देखे जाते हैं। प्रेम . . . प्रेम की दुनिया में, वहां कौन लाभ और कौन हानि देखता है ? भूषण . . . भूषण . . . तुम नहीं जानते कि अचला . . . अचला तुम्हारे प्रेम में कितनी अचल है। [रोने लगती है, कुछ ठहर कर, खड़े हो, इधर-उधर घूमने और आँसू पोंछते हुए।] पर . . . पर . . . पिता . . . पिताजी का . . . स्नेह . . . क्या . . . क्या उन्हें . . . उन्हें मैं कम चाहती हूँ ? . . . कभी नहीं . . . कभी नहीं। (कुछ रुक कर) मैं सम्पत्ति को . . . धन को हाथ का मैल . . . मैल समझती हूँ। लेकिन . . . लेकिन पिताजी को ? . . . कितने अच्छे . . . कितने अच्छे पिता हैं। मेरे लिए . . . मेरे लिये . . . सब कुछ . . . सब कुछ करने को तैयार। . . . भूषण . . . भूषण, तुम्हारे प्रेम की बात. . .मुझे . . . मुझे उनसे नहीं कहना पड़ा . . . मैंने उनसे इस. . . इस विवाह का प्रस्ताव नहीं किया। ओह ! तुम . . .तुम नहीं जानते कितनी कितनी खुशी, कितने. . .कितने उत्साह से वे इस विवाह को करना चाहते हैं। आफ्रिका के एक एक भारतीय,. . . भारतीय ही नहीं हर एक युरोपीयन, को वे विवाह में शामिल करेंगे। हिन्दुस्थान से एक जहाज . . . पूरा का पूरा जहाज रिज़र्व करा मेहमानों को बुलायेंगे। . . . ऐसी . . . ऐसी धूमधाम से आफ्रिका ही में नहीं . . . हिन्दुस्थान में भी कोई . . . कोई विवाह न हुआ होगा। . . . यह . . . यह विवाह . . . उनके . . . उनके जीवन का सब से महान . . . सबसे बड़ा काम होगा। (चुप हो कर फिर सोफा पर बैठते हुए कुछ देर बाद) और . . . और . . . यह सब किस कारण कर सकेंगे ? सम्पत्ति ही के कारण तो ? . . . सम्पत्ति . . . सम्पत्ति हाथ का मैल ? पर . . . पर यह सम्पत्ति कितना . . . कितना बड़ा साधन है, महान कार्यों का . . . सारे सुखों का ? मैं . . . मैं महलों में रही हूँ . . . अच्छे से अच्छे वस्त्र पहिनकर . . . स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन कर . . . फूलों की सेजों पर सोई हूँ,. . . मोटरों में घूमी हूँ,. . . धन के कारण ही तो ? . . . (फिर कुछ रुक कर खड़े हो इधर-उधर टहलते हुए) भूषण . . . भूषण . . .

य...ये सब अकेले... अकेले होता रहा है।... या...या पिता जी के संग...लेकिन...लेकिन यदि तुम्हारे साथ महलों में रहूँ... उन वस्त्रों को पहनूं और तुम देखो...उन भोजनों को खाने के पहले तुम्हें खिलाऊँ और मैं देखूँ... उन पुष्प-शय्याओं पर हम दोनों भेंट कर सोयें...और...और उन मोटरों पर साथ...साथ, साथ घूमें...तो...तो यह सम्पत्ति...यह धन...फिर भी बुरा है? (एकाएक बैठ कर) क्यों...क्यों भूषण, मेरे और अपने भी रास्ते में काँटे ही नहीं बो रहे, पर कुएँ और खंदकें...हाँ, कुएँ और खंदकें खोद रहे हो? महलों के रहते क्यों झोपड़ों की तरफ बढ़ रहे हो? ...छप्पन भोगों के रहते क्यों टुकड़ों की कल्पना कर रहे हो? मूल्य से मूल्यवान वस्तुओं के रहते क्या नंगे....नंगे रहना अच्छा लगेगा? ...मोटरों के रहते क्या जूतियां चटकाते सड़क-सड़क और घर-घर भटकना भला मालूम होगा? ... (फिर कुछ हट कर घूमते हुए) जिनके पास नहीं है, वे इस धन के लिए जीवन... जीवन तक उत्सर्ग करने को तैयार...और...और जिनके पास...या तुम, जिन्हें आसानी से मिल सकता है, वे...वे इसे छोड़ दें...और...और...क्यों...क्यों छोड़ दें।...बुरे रास्तों से इसका उपार्जन नहीं हुआ है।...कानून और नीति के खिलाफ पिता...पिता जी ने कोई...कोई कार्य नहीं किया है। करते तो क्या कानून उन्हें सजा न देता? ऐसी अवस्था में पिता जी की प्रतिष्ठा, उनका सम्मान हो सकना कैसे मुमकिन था। सब आफ्रिका धन कमाने आये थे, तुम्हारे बुजुर्ग भी, पिता जी भी... पिता जी सबसे ज्यादा सफल हुए... सफलता तो गर्व की चीज है। उनकी सफलता से उनका ही नहीं हिन्दुस्थान का सिर ऊँचा हुआ है। और फिर उन्होंने मजदूरों से मुफ़्त में काम नहीं लिया—निर्ख, हाँ निर्ख से ज्यादा उन्हें मज़दूरी दी। इतना...दान...दान के लिए उन्हें कोई बाध्य न कर सकता था।... उनकी उदारता...स्वाभाविक उदारता ही तो इसका सबब है।...इतने अच्छे,...इतने बड़े...इतने उदार मनुष्य को भी तुम मनुष्य...तुम मनुष्य नहीं समझते? और मनुष्य और...और... (क्रोध तथा दृढ़ता से) तुम अगर उन्हें...मनुष्य नहीं समझते तो...तो मैं...मैं तुम्हें मनुष्य नहीं समझती। (कुछ रुक कर) जाओ...जाओ...चले जाओ...हिन्दुस्थान ही नहीं... दुनियां के किसी भी हिस्से में चले जाओ।...तुम्हें निर्धन होने के कारण पिता जी

से ईर्षा है।...तुम्हें दम्भ है,...दंभ है।... (कुछ ठहर कर एकाएक सोफा पर बैठते हुए) पर...पर...भूषण...भूषण तुम्हारे जाने पर...आह!...आह! मैं कैसे रहूँगी?...मेरा... मेरा एक एक क्षण...एक सेकण्ड, कैसे... कैसे निकलेगा?...मैं...मैं पागल हो जाऊँगी? भूषण...मर...मर... जाऊँगी।...मुझे क्या...मुझे क्या अगले...अगले जन्म में ही सुख मिलेगा, इसमें नहीं? (आँसू बहाते हुये) मुझ पर इतना जुल्म न करो...न करो... भूषण। प्यारे भूषण...इतने इतने प्यारे होते हुए भी...क्या तुम...जल्लाद ...जल्लाद हो? (कुछ रुक कर) मैं...मैं तुम्हें जितना चाहती हूँ, तुम मुझे नहीं, अरे जरा भी नहीं, नहीं...नहीं तो तुम्हारे ये वाहियात सिद्धान्त। अरे प्रेम...सच्चा प्रेम तो अन्धा होता है।...वहां सिद्धान्त...सिद्धान्त और वे भी गलत...दंभपूर्ण... (फूट फूट कर रो पड़ती है। कुछ देर बाद सिसकते हुए) विभा, अब तो बस तू...तूही एकमात्र अवलम्ब रही है। पिता जी और भूषण... हाँ पिता जी और भूषण के बाद तू ही तो मेरी सब कुछ है। और...और इतनी बुद्धिमती है तू। ऐसी मित्र भी अगर कुछ नहीं कर सकती तो फिर दुनिया में कोई कुछ नहीं कर सकता। इस मझधार से तू ही जीवन-नैया पार करे तो हो, नहीं... तो डूबी...डूबी तो है ही... (कुछ रुक कर जोर से) विभा....विभा।

नेपथ्य में : आई, आई बहन।

[अचला जल्दी से उठ, आँसू पोछते हुए, सीढ़ियों की तरफ बढ़ती है। विभावती का सीढ़ियों पर चढ़ते हुए प्रवेश। विभावती की अवस्था करीब २१ साल की है। वह गेहुँए रंग की साधारणतया सुन्दर स्त्री है। साड़ी और ब्लाउज़ पहिने हुए है। पैरों में चप्पल हैं। आभूषण सोने के हैं।]

अचला : बहिन तुम तो ऐसी पहुँचीं जैसे मेरे पुकारने का रास्ता ही देख रही थीं।

विभावती : (मुस्कराते हुए) सच्चे हृदय की पुकार कभी निष्फल जा सकती है, बहन?

[दोनों सोफा पर बैठ जाती हैं।]

विभावती : (ध्यानपूर्वक अचला का मुख देखते हुए) और तुम्हारा वही हाल, मेरे इतना कहने, इतना समझाने पर भी वही हाल?

अचला : (आँसू भर कर) अगर मेरे हाथ की बात होती... (चुप हो जाती है)

विभावती : पर मेरे जिम्मेदारी उठाने पर भी (कुछ रुक कर) तुम्हें मेरा भरोसा नहीं है, अचला?

अचला : (अपनी दोनों भुजाएँ विभावती के गले में डालते हुए) तुम्हारा भरोसा! विभा बहन, तुम्हारे भरोसे पर ही जी रही हूँ। हृदय के टुकड़े-टुकड़े होने के बाद कोई क्षणमात्र भी जीवित रह सकता है, पर तुम्हारे भरोसे की रस्सियाँ ही उन टुकड़ों को बाँधे हुए हैं। (कुछ रुक कर) बहन, एक एक क्षण ही नहीं, एक एक सेकेण्ड मुश्किल से बीत रहा है।

विभावती : मैं जानती हूँ, और विश्वास रखो। मेरा सारा ध्यान और वक्त तुम्हारे ही काम में लगा हुआ है। मैं आज विद्याभूषण से मिलकर आई हूँ।

अचला : (अत्यन्त उत्सुकता के स्वर में जल्दी से) तुम उनसे मिलीं, उन्हें ठीक कर सकीं?

विभावती : (गंभीरता से) हाँ, मैं उससे मिली, पर अभी ठीक नहीं कर सकी।

अचला : (लम्बी साँस लेकर) क्यों, क्या कहा उन्होंने।

विभावती : पहले तो मेरे सामने खुल कर बात नहीं की, पर जब मैंने बताया कि तुम मुझसे सब कुछ कह चुकी हो तब खुला।

अचला : और कहा क्या?

विभावती : वही जो तुमने कहा था।

अचला : तुमने कहा नहीं कि संपत्ति का उपार्जन किसी बुरे रास्ते से नहीं हुआ है। पिता जी कानून और नीति पर चले हैं।

विभावती : मैंने सब कुछ कहा।

अचला : फिर?

विभावती : उसकी दृष्टि से ये सारे कानून और नीतियाँ, डाकुओं और लुटेरों की बनाई हुई हैं।

अचला : और वे डाकू और लुटेरे फिर दान में खुद क्यों लुटते हैं।

विभावती : और ज्यादा लूटने के लिये, जिन्हें लूटना होता है, उनकी आँखों पर दान की सफेद पट्टी चढ़ा कर अपने कारनामों को छिपाने के लिए, उन्हें

अन्धा बनाने के लिए। (कुछ रुक कर) जाने दो इन बातों को वे पागलपन की बातें हैं।

अचला : और तुमने यह नहीं कहा कि मैं, न उनके बिना जी सकती हूँ और न पिता जी के।

विभावती : सब कुछ कहा, पर अभी पिघला न सकी; बोला समय सारे घाव भर देता है।

अचला : (क्रोध से) वह मनुष्य...मनुष्य है...या पत्थर...पत्थर?

विभावती : पत्थर?...पत्थर नहीं उससे भी सख्त वज्र...वज्र है। और अगर तुम...कमलनाल से भी कोमल तुम, किसी तरह...किसी तरह भी उस वज्र से अपना पिण्ड छुड़ा सकतीं...

अचला : (रोते हुए) यह....यह न कहो, यह न कहो (कुछ रुक कर) तुम भी असफल...

विभावती : (बीच ही में) अभी असफल होने पर भी मैंने सफलता की उम्मीद नहीं छोड़ी है, यदि तुम उसे नहीं छोड़ सकती, तो मैं उसे ठीक करूँगी, अवश्य करूँगी लेकिन तुम्हें थोड़ा धैर्य रखना पड़ेगा।

अचला : धैर्य? (कुछ रुक कर) एक तो यों ही धैर्य नहीं रहता, दूसरे वे हिंदुस्थान जो जा रहे हैं। उनके जाने पर तुम उन्हें कैसे ठीक करोगी?

विभावती : जहाज में ही ठीक करने का सबसे अच्छा मौका होगा।

अचला : (आश्चर्य से) तुम भी भारत जा रही हो?

विभावती : हाँ, और तुम भी चलोगी।

अचला : (आश्चर्य से विभावती की तरफ़ देखते हुए) बहन!

विभावती : (लंबी साँस लेकर) अगर तुम उसे किसी तरह भूल सकती तो इससे अच्छा कोई उपाय न था।

अचला : (जल्दी से) वह...यह तो...

विभावती : (बीच ही में) मैं समझी कि वह तो संभव नहीं है। तब मैंने बहुत सोचने विचारने के बाद यही रास्ता निकाला कि हम दोनों भारत चलें। जहाज पर सारा मामला मैं ठीक कर लूँगी।

अचला : (विचारते हुए) पर, बहन, पिता जी मुझे जानेदेंगे ?

विभावती : इस समय का तुम्हारा हाल उनसे छिपा नहीं है। वह भारत जा रहा है, यह वे नहीं जानते। जानेंगे तो शायद उस दिन जानेंगे जब जहाज चलेगा। हिन्दुस्थान जाने से तुम्हारा भी जी बदल जायगा, यह मैं तुम्हारे पिता जी को समझा तुम्हें ले चलूंगी।

अचला : (गम्भीरता से) पर वे भी मेरे साथ जाना चाहेंगे।

विभावती : इस सम्बन्ध में मैं उनसे बात कर लूंगी, मेरे साथ जाने पर वे जाने की जिद न करेंगे।

अचला : (कुछ सोच कर) और तुम्हें तुम्हारे पिता जी भेज देंगे ?

विभावती : तुम्हारे साथ जो जाऊँगी।

[अचला सिर झुकाकर गम्भीरता से सोचने लगती है। विभावती उसकी ओर देखती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है]

विभावती : अचला, तुमने मुझ पर एक भार, बहुत बड़ा भार रखा है। मैंने सँभालना स्वीकार किया है। शायद तुम्हें सुखी कर सकूँ और साथ में तुम्हारे पिता जी और विद्याभूषण को भी, पर एक वचन तुम्हें देना होगा।

अचला : (सिर उठाकर) जो कहो, बहन।

विभावती : जो मैं कहूँगी वही करोगी।

अचला : तुम्हारा कहा आज्ञावत मानूँगी।

विभावती : बहुत सरल बात न होगी, अचला, तुम्हें अपनी जबान, अपनी आँख, अपने कान सब पर ताले लगाकर रखने होंगे। महान् बुद्धिमत्ता, महान् साहस और महान् आत्मनिरोध करना होगा। तुम्हें सख्त रहना होगा, बहन, बहुत सख्त। हीरे से ही हीरा काटा जा सकता है। उसे मालूम होना चाहिए तुम बहुत सस्ती नहीं हो, वरन् उसकी पहुँच के परे हो, तुम्हें उसकी परवाह नहीं। यदि उसे तुम्हारी आवश्यकता है तो वह इसके लिये प्रयत्न करे, प्रयत्न नहीं तपस्या। सके बिना मैं कुछ न कर सकूँगी। वज्र को पिघलाना है, पत्थर को भी नहीं . . . और . . .और सबसे पहले क्या करना होगा, जानती हो ?

अचला : क्या ?

विभावती : जब तक मैं न कहूँ, उससे मिलना न होगा; जहाज के सामने रहते हुए भी उसकी तरफ देखना न होगा।

अचला : विश्वास रखो, विभा बहन, जैसा तुम कहोगी, वैसा ही करूँगी।

[अचला सिर झुका कर कुछ सोचने लगती है। विभावती उसकी ओर देखती है एकाएक अचला विभावती से लिपट जाती है।]

अचला : विभा...विभा बहन। तुम कितनी...कितनी अच्छी हो!

[विभावती लिपटी हुई अचला की पीठ पर अपने दोनों हाथ फेरती है।]

यवनिका

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान : जहाज में अचला का फर्स्ट क्लास केबिन।

समय : संध्या

[केबिन की पार्टीशन की दीवालें लकड़ी की हैं और सफेद रँगी हुई। पीछे की दीवाल में एक गोल खिड़की है। खिड़की में मोटा काँच है। इसके चारों तरफ़ पीतल की रिंग है और तीन बोल्ट। यह काँच आधा खुला है, जिससे बाहरी हवा आ रही है। दाहिनी ओर भी दीवाल में बाहर जाने का दरवाजा है, जो बन्द है। छत लोहे की है। वह भी सफेद है, और उसके बीच में बिजली की एक बड़ी बत्ती तथा बिजली के दो पंखे लगे हैं। बत्ती जल रही है और पंखे चल रहे हैं। जमीन पर कालीन है और लोहे के स्प्रिंगदार एक खास तरह के दो 'बर्थ' जिन पर बिस्तर बिछे हुए हैं। एक तरफ़ हाथ धोने का 'बेसिन' है। एक ओर ऊँचा सा शीशा और शीशे के पास ही कपड़े टाँगने का पेगस्टैण्ड। बीच में टेबिल है और उसके आस-पास दो फोल्डिंग कुर्सियाँ। टेबिल सफेद मेजपोश से ढकी हुई है। शीशे, कुर्सियाँ, बिस्तरों की चादरों, तकियों की खोलियों, मेजपोश आदि सब पर "ब्रिटिश इण्डिया नेविगेशन कम्पनी" के मोनोग्राम हैं। दोनों बर्थ के नीचे अचला और विभावती के कुछ सूटकेस रखे हैं। केबिन में इधर-उधर भी कुछ सामान पड़ा है। एक बर्थ पर अचला बैठी हुई गा रही है। उसके मुख पर उद्विग्नता तो नहीं पर चिन्ता का साम्राज्य है।]

गान

कण कण से क्षण क्षण पर चल युगयुग के पहुँच किनारे
अमर देश की अजर सुन्दरी यह आशा कब हारे
जल से भरे जगत में रहते ये नयनों के तारे
कब तक पथ में प्राण बिछाये झिलमिल ज्योति सहारे

पलकों की छाया में छाये बादल दल कजरारे
मोह छोड़ मन को न डुबाये बरबस आँसू खारे

अचला : लुरैन्को मार्क्विस, बैरा, दारसलाम, जंजीबार, और आज मुम्बासा...हाँ,...मुम्बासा भी चला गया। अब नवें...नवें, दिन जहाज बम्बई पहुँच जायगा। (कुछ रुक कर)...दस दिन डरबन छोड़े हो गए और नौ...नौ दिन बम्बई पहुँचने को हैं।...पर इन दस दिनों में क्या हुआ? (दाहिनी तर्जनी से बाईं हथेली पर शून्य बनाते हुए) ज़ीरो...बड़ा भारी साइफर। (कुछ रुक कर) नहीं...नहीं... और कई बातें हुईं...कई। दस बार सूर्य उदय और दस बार अस्त हुआ। ...चन्द्रमा की दस कलाएं बढ़ गईं, और परसों, हाँ, परसों तक वह पूरा भी हो जायगा। दस दफ़ा तारे, हाँ, तारे भी निकले और लुप्त हुए। नीले... नीले समुद्र में सफेद, हाँ सफेद लहरें उठीं, दौड़ दौड़ कर जहाज से टकरायीं... फेन...फेन बनीं और फिर उसी नीले समुद्र में मिल गयीं। उनसे स्पर्द्धा करने को नीले...नीले आकाश में सफेद, हाँ, अगणित सफेद बादल के टुकड़े उठे, वे भी दौड़े और फिर उसी नीले आकाश में विलीन हो गए। लुरैन्को मार्क्विस आया और चला गया। बैरा आया और चला गया।...दार-सलाम आया और चला गया।...जंजीबार आया और चला गया... और आफ्रिका का आखिरी बन्दरगाह मुंबासा...हाँ मुंबासा भी आया और आज चला गया। जब जब...जब जब ये बन्दरगाह आये...जहाज में नवजीवन,...हाँ, नवजीवन का संचार हुआ।...बड़ी चहल पहल, ...खूब चहल पहल मची। कुछ यात्री उतरे,...कुछ चढ़े,...कुछ जहाज से इन स्थानों को देखने गए और कुछ इन स्थानों से जहाज और उसके यात्रियों को देखने आए। मैंने भी इन बन्दरों को देखा... पर... पर याद ही नहीं कि कहाँ क्या देखा? (फिर कुछ रुक कर) यह सब ....यह सब हुआ। लेकिन जहाँ तक...जहाँ तक...मेरे काम का सम्बन्ध है, वहाँ तक...वहाँ तक (दाहिनी तर्जनी से बाईं हथेली पर शून्य बनाते हुए) शून्य! और...और जिस तरह...दस दिन बीते उसी प्रकार शायद रहे हुए...नौ...नौ दिन भी बीत जायँगे।

(फिर कुछ ठहर कर) पिता जी...पिता जी को छोड़े...दस दिन ...हो गये। आह! कितनी...कितनी बुरी तरह...वे घर पर ही नहीं,... वार्फ पर और जहाज के डैक पर भी रोये थे। सारे डरबन का...और ...और डरबन ही क्या, आस पास का भी भारतीय समाज मुझे पहुँचाने आया था; कई यूरोपियन भी; पर...पर सब... सबके सामने सारे संकोच...सारी सामाजिक मर्यादा को तिलांजलि देकर रोये थे। वार्फ की भीड़ ने...जहाज के यात्रियों ने डरबन के...और डरबन के क्या आफ्रिका के...सबसे बड़े हिन्दुस्थानी को रोते देख किस प्रकार...किस तरह उनकी और मेरी ओर देखा था। उस कारुणिक दृश्य को मंगलमय बनाने को कितने पुष्पहार...कितनी मालाओं से मैं लादी गयी थी। क्या कहा होगा सबने? ये कैसे असभ्य, कैसे असंस्कृत हैं। पर सच्चा आन्तरिक प्रेम इन बाहरी शिष्टाचारों को कब...कब देखता है? मेरे हृदय का बाँध भी टूट गया था। और...और जब जहाज चलने लगा उस समय...उस वक्त, उसी बाँध के साथ जब कागज की...कागज की वह रंग बिरंगी डोरी,...जिसका एक सिरा वार्फ पर खड़े हुए पिता जी तथा दूसरा डैक पर खड़ी हुई मेरे हाथ में था, टूटी...टूटी; तब...तब...कैसा...कैसा मालूम हुआ,...मानों ...मानों...हृदय...हृदय ही टूट गया है। उस...उस समय श्रीफल और मिश्री को समुद्र में अर्पण करते हुए...कैसा...कैसा मालूम होता था,...मानों...मानों मैं अपना सर्वस्व उसी आफ्रिका के समुद्र में भेंटकर चल रही हूँ। (फिर कुछ ठहर कर) पिता जी के और मेरे बीच में अब समुद्र लहरा रहा है।...अथाह पानी भरा है। उसकी लहरें...हाँ, अगणित लहरें उठ रही हैं, फेन धुल रहा है, बुदबुदे फूट रहे हैं।... पिता जी दूर...कितनी दूर हैं?...लेकिन...लेकिन भूषण ...भूषण...इतने निकट...इतने नजदीक होते हुए भी दूर... कितने दूर हो रहे हैं।...अरे मैं फर्स्ट क्लास में हूँ और वे सेकण्ड क्लास में;...इतनी ही दूर तो हैं। पर मैं उनके पास जा नहीं सकती ...और वे क्यों नहीं आते? मुझे तो विभा...विभा ने रोक दिया

है; बन्दरों पर उतरते समय एकाध बार दृष्टि भर डाल सकी,...वह...
वह भी डरते हुए कहीं विभा न देख ले ... पर... उन्हें...उन्हें
उन्हें किसने रोका है ?...फर्स्ट क्लास पैंसिजर यदि सेकण्ड क्लास केबिन में
जा सकते हैं। सेकण्ड क्लास पैंसिजर भी तो फर्स्ट क्लास पैंसिजर से मिलने के लिए
उनके केबिन में आ सकते हैं। यह कोई रेलगाड़ी, आफ्रिका की रेलगाड़ी में योरो-
पियन और इन्डियन डब्बों का सवाल थोड़े ही है। (कुछ रुक कर) विभा...
विभा रोज़ ही उनके डैक पर जाती है। घण्टों...घण्टों वहाँ रहती है।
शायद उनके केबिन में भी जाती हो। वह वहाँ करती क्या है ? मुझे क्यों नहीं बताती
कि क्या कर रही है ? सदा कहती है उनके केबिन के दरवाज़े में भी नहीं घुसी,
उनसे बातचीत ही नहीं हुई; फिर वहाँ घण्टों...रोज़ घण्टों क्यों रहती है ?
(फिर कुछ रुक कर) उन्हें...उन्हें भी तो विभा ने यहाँ आने से नहीं रोक
रखा है ? (एकाएक खड़े होकर अत्यन्त उद्विग्नता से टहलते हुए) विभा...
विभा भी क्या उन्हें चाहती है ? (बेचैनी से जल्दी जल्दी टहलते हुए) इसी...
इसी लिए क्या वह आई है ? इसी...इसीलिए क्या वह मुझे उनसे नहीं
मिलने देती ? उनका मन चुपके चुपके मुझसे फाड़ तो नहीं रही है ? यह...
यह तो उनसे नहीं कहा है कि देखो...देखो उसे धन का कितना गर्व है...
कितना घमण्ड है कि वह तुमसे मिलने तक नहीं आई...बात भी नहीं करती
...तुम्हारी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखती। (कुछ रुक कर) धन ?
...अरे धन तो मैं क्षण भर...एक सेकेण्ड में छोड़ सकती हूँ।
कहाँ तुम्हारे वियोग की यह घोर व्यथा...कहाँ...कहाँ अमीरी छोड़
गरीबी के साधारण...अत्यन्त साधारण कष्ट। वह सांपत्तिक उत्तराधि-
कार ... तुम्हारे ... तुम्हारे हृदय पर के अधिकार...अधिकार के
सामने कौन सी चीज है ? (कुछ रुक कर) और फिर किस किस के पास
धन है ? किस किस को संपत्ति का उत्तराधिकार मिलता है ? सुना...
सुना नहीं है भारत में हज़ारों, लाखों नहीं, करोड़ों...अरे अधिकतर लोगों
को रोकर पूरा खाना...खाना भी नसीब नहीं होता, शरीर ढकने को
वस्त्र, पूरे वस्त्र तक नहीं मिलते, वे भी तो जीते हैं। फिर वे तो निरवलंब
हैं, मुझे...मुझे तो प्रेम...प्रेम का इतना बड़ा अवलम्ब है। (कुछ

रुक कर) भूषण!...भूषण! तुम मुझ से हरगिज हरगिज न छूट सकोगे।

[एकाएक अचला बर्थ पर बैठ जाती है, और हाथों पर मुख रख कर रोने लगती है। विभावती का केबिन का दरवाजा खोल प्रवेश। विभीवती के आते ही दरवाजा आप से आप बन्द हो जाता है।]

विभावती : (अचला के पास जाकर) आज...आज फिर यह पुराना दौरा हो गया।

[अचला कोई उत्तर नहीं देती। विभावती अचला की बर्थ पर बैठ उसके गले में भुजाएँ डालती है।]

अचला : (विभावती की भुजाओं को अपने गले से निकालते हुए) नहीं ......नहीं मत बोलो (लेट कर तकिये से मुँह छिपा लेती है।)

विभावती : (अचला की पीठ पर हाथ फेरते हुए) मुझसे भी नाराज होगईं, बहिन?

[अचला जवाब नहीं देती, कुछ देर निस्तब्धता।]

विभावती : (गम्भीरता से) मैंने पहले ही कहा था कि मेरे कहने पर चलना सरल बात न होगी।

अचला : (एकाएक सिर उठाकर जल्दी से) और यह भी कहा था कि जहाज में ही सब ठीक कर लोगी।

विभावती : (मुस्कराते हुए) तो अभी जहाज में आधा वक्त बाकी है।

अचला : (उठ कर बैठते हुए और आँसू पोछते हुए) जिस तरह आधा गया उसी तरह शेष आधा भी चला जायगा।

विभावती : और दूसरी जहाज से हम आफ्रिका भी लौट आयेंगे।

अचला : ओ हो! तो आपको जहाज में सफलता न मिली तो आप हिन्दु-स्थान पहुँच कर अपनी कोशिश करेंगी?

विभावती : जरूर।

अचला :(घृणा से) और यह प्रयत्न किस तरह आगे बढ़ रहा है, यह भी तो मालूम हो।

विभावती : (गम्भीरता से) अचला, तुमने काम मुझ पर छोड़ा है। तुम्हें आम खाने से मतलब या पत्ते गिनने से?

अचला : पर यहाँ तो पत्ते भी गिनने को नहीं हैं। दरख्त सूख रहा है, आम फलेंगे कहाँ?

विभावती : मैं अपनी कार्य-प्रणाली तुम्हें बताने को बाध्य नहीं हूँ।

अचला : (कुछ ठहर कर) क्यों बताओगी? तुम तो घण्टों उनके डैक पर रहती हो, शायद उनके केबिन में भी रहती हो, तुम्हें संतोष हो ही जाता होगा। जल तो मैं रही हूँ, मर तो मैं रही हूँ।

विभावती : (आश्चर्य से) अचला! अचला! तुम क्या कह रही हो? क्या कह रही हो? तुम्हें क्या कोई शक हो गया है?

[अचला कोई उत्तर न दे तकिये में सिर छिपा फिर रोने लगती है। विभावती शून्य दृष्टि से गोल खिड़की के बाहर देखती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

विभावती : (गम्भीरता से धीरे-धीरे) बहन अचला, मैंने स्वप्न में भी न सोचा था कि तुम्हारे हृदय में मुझ. . .मुझ पर कोई, कभी किसी प्रकार का भी, और कम से कम ऐसा घृणित सन्देह हो सकता है। मैं घण्टों डैक पर रहती हूँ, इसमें शक नहीं, और न क्यों रहूँ, इसी काम के लिए जो आई हूँ, पर भगवान् जानता है मैंने, अगर आज तक उससे बात की हो, उसके केबिन के दरवाज़े पर भी पाँव रखा हो। मैं वहाँ जाती हूँ, रहती हूँ, दूसरे पैंसिजर्स से बातें करती हूँ, वह भी कभी कभी अपने डैक पर निकलता है, पर उसकी तरफ देखती तक नहीं। मैं चाहती हूँ पहले वह मुझसे बात करे। अगर उसका तुम पर प्रेम है तो वह बात करेगा ही। प्रेम वज्र भी पिघला कर रहेगा। तुम इसी जहाज से यात्रा कर रही हो, क्या वह यह जानता नहीं है? हम जन्मभूमि के दर्शन की डुग्गी पीटकर आयी हैं, पर वह यह जानता है कि हमारी यह यात्रा उसी के कारण हो रही है, और ऐसी हालत में मैं यदि उससे बात करूँगी, या तुम्हें उससे मिलने दूँगी तो उसका दिमाग सातवें आसमान पर पहुँच जायगा। फिर तो सौदा पट ही नहीं सकता। तुम्हें सरैण्डर करना होगा, मैं चाहती हूँ वह सरैण्डर करे। सम्भव है जहाज में बात ही न हो, हिन्दुस्थान पहुँच कर बात हो, वहाँ भी फौरन नहीं, कुछ समय बाद। तुमने मुझे एक कठिन, अत्यन्त कठिन काम सौंपा है। पत्थर को नहीं वज्र को पिघलाना है।

मैं भी बड़ी ज़िम्मेदारी लेकर, बड़ी जोखिम उठाकर आयी हूँ। तुम्हारे पिता से कह कर तुम्हें लायी हूँ। (कुछ रुक कर) और तुम्हारा ऐसा शक मुझ पर होता है? मैत्री की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह एक दूसरे के लिए अखण्ड और अकाट्य विश्वास उत्पन्न करती है। यदि यही नहीं है तब...तब...तो

[अचला एकाएक उठकर विभावती के गले से लिपट जाती है और फूट फूट कर रो पड़ती है। विभावती उसकी पीठ पर हाथ फेरती है और लम्बी सांस लेती है। कुछ देर निस्तब्धता।]

अचला : (एकाएक विभावती के पैर पकड़ सिसकते हुए) मैंने पाप.. बड़ा भारी पाप किया है; मुझे क्षमा...क्षमा करो, बहन, मैं होश... पूरे होश में नहीं हूँ।

विभावती : (जल्दी से अचला को उठाकर हृदय से लगाते हुए आँसू भरी आँखों और रुँधे गले से) यह क्या? यह क्या करती हो, अचला? मैं जानती हूँ तुम पूरे होश में नहीं हो, पर...पर...बहन धैर्य...धैर्य तो रखना ही होगा।

लघु-यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान : जहाज में विद्याभूषण का सेकण्ड क्लास केबिन।

समय : रात्रि

[केबिन की दीवालें और छत वैसी हैं जैसी फर्स्ट क्लास के केबिन की थीं। पीछे की दीवाल में वैसी ही गोल खिड़की भी है और दाहिनी तरफ की दीवाल में बाहर जाने का दरवाजा। यह दरवाजा भी बन्द है। छत की बत्ती कुछ छोटी है और पंखा एक है। जमीन पर कालीन नहीं है। फर्श की लकड़ी पर ही बार्निश है। एक बर्थ है, एक कुर्सी और छोटी टेबिल। एक ओर हाथ धोने का 'बेसिन' है, एक तरफ कपड़े टाँगने का 'पेग स्टैण्ड', पर शीशा नहीं है। "ब्रिटिश इण्डिया नेविगेशन कम्पनी" के मोनोग्राम यहाँ भी सब चीज़ों पर हैं। बर्थ के नीचे विद्याभूषण के दो सूटकेस और इधर उधर कुछ सामान पड़ा हुआ है। कुर्सी पर विद्याभूषण बैठा हुआ है। उसके सामने की टेबिल पर फुलस्कैप कागज हैं; कुछ

लिखे गए कागज 'टैग' से नत्थी किए गए हैं। इनमें से आखिरी कागज को वह पढ़ रहा है। बाकी के कागज ऊपर को उल्टे हुए हैं। उसके हाथ में फाउन्टेनपेन है।]

विद्याभूषण : इस तरह अपने देशवासियों को ही खरीदे हुए गुलामों से भी बदतर मान, उन्हें अगणित कष्ट दे, जिसमें न जाने कितनों की जाने तक गईं, इने गिने भारतीय ही आफ्रिका में धनवान बने। मलाई यूरोपियनों को मिली, पर इन यूरोपियनों का काम ही न चलता अगर ये भारतीय काम लेने वाले और काम करने वाले न मिलते, इसलिए काम लेने वालों को भी कुछ मिल गया। पर इन काम लेने वालों का भी क्या हाल है? जिन फार्मों को आबाद करने के लिए उन्होंने अपने देशवासियों का खून खींचा, और जमीन को जोता अपने देशवासियों की हड्डियों के हलों से, वे भी इन फार्मों के मालिक नहीं हो सकते। इस पाप के एवज़ाने में उन्हें चाँदी के टुकड़े मिल गए हैं। इतना ही नहीं, इन चाँदी के टुकड़ों से वे अच्छे-अच्छे मोहल्लों में मकान तक नहीं बना सकते, किराये पर उठाने के लिए ही नहीं, रहने तक के लिए नहीं। इनके कारण जो धन पैदा हुआ है, जिस धन से बड़े बड़े होटल बने हैं, बड़े बड़े थियेटर हाऊस, उनमें साधारण भारतीय तो दूर रहे, ये धनकुबेर भारतीय भी नहीं ठहर सकते, प्रवेश नहीं कर सकते। अरे रेल और ट्राम में भी गोरों के लिए अलग और हमारे लिए अलग जगह है। ऐसा वर्णभेद शायद दुनियाँ में कहीं न होगा। कैसा गुनाह बेलज्जत हुआ है। (कुछ ठहर कर कागज़ों को टेबिल पर पटक सामने देखते हुए) उहूँ...उहूँ...कुछ नहीं...कुछ नहीं...सारा...सारा लेख जीवन से रहित जान पड़ता है। मालूम होता है...मानों...मानों किसी अशक्त मनुष्य द्वारा, या तो जिसका शरीर अच्छा नहीं है, या मन,...लिखा गया है;...न लालित्य है,...न ओज...और न तर्क। (फिर कुछ ठहर कर) हो कहाँ से?... हृदय में लालित्य,...हृदय में ओज हो तो लेख में आये! और तर्क?... तर्क करने की तो शक्ति...शक्ति ही चली गई है। (सारे लिखे हुए कागजों को फाड़ते हुए) बेकाम...बेकाम चीज है।...अचला! अचला! मैं भाग कर आ रहा था...सोचा था धीरे-धीरे...धीरे-धीरे किसी तरह...किसी प्रकार भी तुम्हें भूलूँगा,...पर तुम...साथ-साथ ...साथ-साथ आई।...तुमसे ही भागा था...पर जब जहाज

में तुम्हें देखा तब...तब प्रसन्नता...उल्टी प्रसन्नता हुई,...संतोष हुआ...सोचा अब तो कम से कम...कम से कम जहाज पर... रोज ही मिलना होगा।...साथ-साथ नीला आकाश और उसकी विचित्रताओं को...नीला समुद्र और उसकी अद्भुतताओं को देखेगें।...रत्नाकर से ही रोज़ निकलते और उसी में डूबते हुए...उस जाज्वल्यमान रत्न सूर्य उस बढ़ते और घटते हुए रत्न चन्द्र को निरखेंगे...अपने ही रत्नों से आलोकित कभी लाल, कभी सुनहरी...कभी श्वेत और कभी नीलिमा मिले रहने के कारण अत्यन्त श्वेत समुद्र, उसकी अगणित लहरों का अवलोकन करेंगे।...वे उठती और...और विलुप्त होती हुई लहरें, हृदय...हृदय में न जाने कितने भावों को उठा उठाकर विलुप्त करेंगी।...उन लहरों को जैसा फेन...सफेद फेन बनता है...वैसा...ही उन भावों से... शरीर...शरीर पर श्वेत स्वेद निकलेगा। (कुछ रुक कर)...जब जहाज भिन्न-भिन्न... भिन्न-भिन्न बन्दरगाहों पर ठहरेगा, तब...तब साथ-साथ... हाँ, साथ-साथ वहाँ उतर कर साइट सीइंग करेंगे।...पर...पर कल... कल सबेरे...जहाज बम्बई...बम्बई पहुँच रहा है,...और इन अठारह...अठारह दिनों में तुमने...तुमने तो एक बार...एक बार दृष्टि उठाकर मेरी ओर देखा तक नहीं। कभी...कभी सामना... सामना भी हो गया...तो ऐसा...ऐसा व्यवहार जैसे...जैसे जानती ही न हो; इतना...इतना ही नहीं...इस तरह...इस प्रकार दृष्टि फेरी...मानों...मानों, मैं कोई घृणित जन्तु...या भूत प्रेत होऊँ। और वह तुम्हारी मित्र विभावती? ... शायद ... एक ... एक भी ऐसा पैसिंजर न होगा...जिससे घुल...घुल कर घंटों बात न की हो? पर मैं...मैं तो उसके लिए 'आउट कास्ट'...अस्पृश्य हूँ,... जिसकी छाया...छाया भी पड़ना पाप है। (कुछ रुक कर) तब... तब तुम लोग आई क्यों हो?...सचमुच...सचमुच ही जन्मभूमि के दर्शन करने और साथ ही...पग-पग पर मेरा...मेरा अपमान करने? ...सोचा था...आज नहीं मिली तो...कल...कल मिलोगी... पर...पर सारा समय ही बीत गया। (कुछ रुक कर) तो...मैं...

मैं ही क्यों न मिलता? (फिर कुछ रुक कर) लेकिन मैं...मैं क्यों मिलूँ, इसलिए...इसलिए कि वह धनवान है और मैं निर्धन? (फिर कुछ रुक कर) कभी नहीं।...कभी नहीं! धनवान! वह पाप से कमाया हुआ पैसा!..... वह...वह अगणितों के पसीने,...आँसुओं और खून से...खून से सना भरा हुआ धन!...लक्ष्मीदास...लक्ष्मीदास की वह लड़की...वह सम्पत्ति के मद से चूर...वह धन के नशे से अन्धी...अचला!...अचला तो प्रेम...प्रेम नहीं घृणा...घृणा की चीज है। (एकाएक उठकर टहलते हुए कुछ देर चुप रहने के बाद) पर...पर...वह भूलती...भूलती कहाँ है?...अरे सारा मस्तक धुँधला...हो गया है। एक... एक भी भाव हृदय में नहीं उठता? (फाउन्टेनपेन को हथेलियों के बीच में घुमाते हुए) यह कुंठित हो गई है...कुंठित, एक चीज भी तो ठीक नहीं लिखी जाती। (कुछ रुक कर जल्दी जल्दी चलते हुए) भूलूँगा, भूल जाऊँगा...अभी जहाज में है...साथ में है...इस...इसलिए नहीं भूली जाती...बंबई पहुँचते ही, ...बंबई भी छोड़कर कहीं चला जाऊँगा। जब तक...जब तक वह हिन्दुस्थान में रहेगी...जहाँ वह रहेगी...उस जगह से दूर...बहुत दूर। रहूँगा (कुछ ठहर कर एकाएक फिर बैठते हुए) पर फिर...फिर भी भूली... भूली जायगी?...और अगर...न भूली...न भूली जा सकी तो? वह आफ्रिका लौट गई...,वहाँ...वहाँ...उसका विवाह हो गया तब? (कुछ रुक कर) अभी...अभी तो मौका है...फिर...फिर तो हाथ मलना...हाथ मलना ही रह जायगा,...और यह मौका...यह मौका भी...आज की रात...आज की रात भर ही है। (फिर कुछ रुक कर खड़े हो) तो चलूँ...चलूँ...(फिर कुछ रुक कर) पर...पर कहूँगा... कहूँगा क्या? (घूमते हुए) यह कहना होगा कि मैंने...मैंने गलती की... वह संपत्ति अच्छे रास्ते से कमाई गई है। वह उस धन को रखे, धनवान बनी रहे...अपने पिता के साथ रहे...और...और अपने पिता से कह कर किसी ...किसी भी तरह मुझसे विवाह कर ले।...(कुछ रुक कर) मुझ पर वह और उसके पिता कृपा करें...अनुग्रह करें। (फिर एकाएक बैठ कर) कभी नहीं...कभी नहीं हो सकता। पापी...पापी...एक धर्मात्मा पर...

धर्मात्मा पर कृपा करे?...उलूकवाहिनी...उलूकवाहिनी की मयूर-वाहिनी...मयूरवाहिनीपर विजय हो। और...और...उस खून...खून से भरे हुए...खून से सने हुए धन का मैं...मैं भी गुलाम हो जाऊँ?... कभी नहीं...कभी नहीं! (हाथों पर अपना मुख रखकर कुछ देर चुप रहने के बाद) पर...पर ऐसे तो जीवन...जीवन ही निरर्थक हो जायगा। (एका-एक उठ कर, कुछ रुक कर टहलते हुए) भगवान ने कदाचित् हम दोनों को एक दूसरे के लिए ही बनाया है। तभी...तभी तो मेरे भागने पर भी वह पीछे चली आई आफ्रिका से भारत, नदी नालों को नहीं समुद्र को पार कर... सौ दो सौ मील नहीं, हजारों मील।...अब भी उसका तिरस्कार करना... शायद भगवान्...भगवान् का तिरस्कार करना होगा। (कुछ रुक कर) और...और...जब वह मेरे सिद्धान्त नहीं मानती, तब...तब संपत्ति छोड़े क्यों?...बलपूर्वक अपने सिद्धान्त उससे मनवाना भी तो ठीक नहीं। मैं...मैं उस धन को न छुऊँगा। अपना गुजर-बसर अपने श्रम से करूँगा। मैं जर्मनी की इस प्रावर्ब को मानता हूँ—"Better a dollar earned than two inherited" पर...पर...वह...वह क्यों श्रम करे,... वह क्यों उत्तराधिकार छोड़े? वह क्यों अमीर से गरीब...अमीर से गरीब बने? (कुछ रुक कर जल्दी-जल्दी टहलते हुए) विद्याभूषण...विद्याभूषण... तू अचला के बिना...अचला के बिना जीवित...जीवित नहीं रह सकता और यही यही एक जिन्दगी जीने...जीने को है। मरने...मरने के बाद तो बस...बस (कुछ रुक कर) छोड़...छोड़ इस झूठे गर्व को, त्याग...त्याग इस मिथ्या दंभ को। अभी...अभी भी मौका है।...अवसर गया तो पछताना ही बाकी रह जायगा। जा...जा उसकी शरण।...यह प्रेम...प्रेम की पाखंड पर जीत होगी।...यह...यह हृदय की मस्तिष्क पर विजय होगी। यह वियोग का समुद्र पार कर संयोग...संयोग के किनारे पहुँचना होगा। यह...यह ज्वालामुखी की ज्वालाओं से निकल कर हिमाच्छादित हिमालय के...हाँ, हिमालय की तलेटी में, हाँ, तलेटी में आश्रय लेना होगा। (दरवाजे की ओर बढ़ते हुए) चल...चल...जल्दी कर...शीघ्रता।

[ज्योंही विद्याभूषण दरवाजे को खोलने को हाथ बढ़ाता है त्योंही दरवाजे

को बाहर से खोल अचला का प्रवेश। अचला विद्याभूषण को देख ठिठक जाती है, अचला को देख विद्याभूषण ठिठक जाता है। अचला लपक कर विद्याभूषण से लिपट जाती है और फूट फूट कर रोने लगती है। कुछ देर कोई कुछ नहीं बोलता।]

विद्याभूषण : (अचला की पीठ पर हाथ फेरते हुए गद्‌गद् स्वर से) अचला! प्यारी अचला!

अचला : भूषण, निर्दय भूषण!

विद्याभूषण : निर्दय भूषण!

अचलाः : (और सिसकते हुए) हाँ निर्दय...क्रूर...पाषाणमन वज्रहृदय भूषण!

विद्याभूषण : (मुस्कराते हुए) एकदम इतने विशेषण?

अचला : (कुछ शान्ति से) क्यों नहीं? मुझे छोड़ कर भागे। मैं पीछे-पीछे आई, तो भी मुझसे बात तक न की।

विद्याभूषणः : और तुमने...तुमने मेरी तरफ देखा भी? जैसे मैं कोई घृणित जन्तु होऊँ; कोई भूत-प्रेत, पिचाश होऊँ!

अचला : (अलग होकर विद्याभूषण की ओर एकटक देखते हुए) क्या कहते हो भूषण? (कुछ रुक कर) आखिर भी आई तो मैं ही!

विद्याभूषण : (उसी तरह एकटक अचला की ओर देखते हुए) एक बात मानोगी?

अचला : क्या?

विद्याभूषण : तुम्हारे पास आने के लिए ही मैं इस वक्त दरवाजा खोल रहा था।

अचला : चलो, झूठे!

विद्याभूषण : कैसे विश्वास दिलाऊँ?

अचला : (कुछ रुक कर)सुनो, मैं सारी संपत्ति छोड़ने का उस सम्पत्ति का उत्तराधिकार छोड़ने का, अमीरी से गरीबी में आने का, श्रम कर जीविका उपार्जन करने का, निश्चय करके आई हूँ।

विद्याभूषण : (आश्चर्य से) अचला! अचला!

अचला : (विद्याभूषण का हाथ पकड़ बर्थ पर ले जाकर स्वयं बैठ तथा उसे बैठाते हुए) हाँ, भूषण और कारण...कारण जानते हो?

विद्याभूषण : मेरा प्रेम?

अचला : सिर्फ वही नहीं, यद्यपि प्रेमी के लिए सर्वस्व समर्पण करने से अधिक सुखदायक शायद कोई चीज़ नहीं, पर मेरा भी विश्वास...दृढ़ विश्वास हो गया है कि वह धन बुरे मार्गों से उपार्जित किया गया है। (कुछ रुक कर) एक बात तुम्हें नहीं मालूम है?

विद्याभूषण : (उत्सुकता से) क्या?

अचला : जब मैं छोटी थी तब एक दिन मैंने खुद पिता जी की क्रूरताएँ देखी थीं। उन्होंने चाबुक...बहुत ही बड़े चाबुक से....जिसे वे सुल्तान दूल्हा कहते थे, दो आदमियों और एक औरत को पीटा था, बुरी तरह पीटा था। आह! वह औरत किस तरह...किह प्रकार चिल्लाती थी। उनके सिपाहियों ने बन्दूकें...बन्दूकें भी चलायी थीं और अभी वे एक दिन मुझसे कह रहे थे कि वे सारे संसार का खून बहते, उसकी नदियाँ बहते देख सकते हैं।

विद्याभूषण : (विचारते हुए) पर, अचला, तुम्हें...तुम्हें कष्ट... कष्ट तो न....

अचला : (बीच ही में) कोई कष्ट, मुझे कोई कष्ट न होगा। हिन्दुस्थान में अपने देश में, एक छोटे से मकान में हम रहेंगे। उस देश...उस देश को ही छोड़ देंगे, जहाँ हमारा पग-पग पर, धनवान होते हुए भी, संपत्तिशाली होते हुए भी, अपमान होता है। तुम लिखोगे, मैं चरखा चलाऊँगी। तुम लिखने से कमाओगे, मैं कातने से। सादा भोजन करेंगे। सादे वस्त्र पहिनेगें। सुख...कितना सुख रहेगा....और पिता जी भी थोड़े दिनों बाद में उस सारी संपत्ति को दान देकर देश लौट आवेंगे।

विद्याभूषण : (गद्गद स्वर से) अचला...अचला...तुम कितनी अच्छी हो...कितनी महान हो? तुमने कितने...कितने बड़े त्याग का...

अचला : (बीच ही में बड़े जोश से) भूषण, आज का यह दिन, आज के

ये क्षण, मेरे जीवन का सबसे बड़ा दिन, मेरे जीवन के सबसे महान क्षण हैं। कारण जानते हो?

विद्याभूषण : क्या?

अचला : (उसी जोश से) इस दिन ने, इन क्षणों ने मुझे जीवन की सबसे बड़ी चीज दी है।

विद्याभूषण : कौन सी?

अचला : किसी पर निर्भर न रह कर अपने आप पर निर्भर रहना।

विद्याभूषण : (मुस्कराकर) मुझ पर भी नहीं?

अचला : (उसी जोश से) तुममें और मुझमें तो कोई अन्तर ही नहीं, तुम पर...तुम पर नहीं, संपत्ति...निर्जीव संपत्ति पर। यह दुनियाँ में बड़ा, शायद सबसे बड़ा अवलम्ब है और जो उस अवलंब को छोड़ सके, वही सच में स्वतंत्र है। (कुछ रुक कर) पर देखो...कल...कल बम्बई पहुँचते ही हमें विवाह कर लेना चाहिए। भूषण मैं अठारह वर्ष की हो गई हूं; मैं बालिग हूँ, मैं विवाह कर सकती हूँ। देर हुई तो कोई नया झगड़ा न खड़ा हो जाय। यह विभावती कोई उपद्रव कर सकती है। कहीं पिता जी को इसने लिख दिया, और वे कहीं भारत आ गये, तो सब गुड़ गोबर ही जायगा। हम विवाह कर चुकेंगे और फिर वे आये भी, तो कुछ नही कर सकते। फिर तो जो कुछ मैं कहूँगी वह उन्हें करना होगा। और यह विभावती....विभावती यड़ी बुरी औरत है।

विद्याभूषण : हाँ, मालूम तो ऐसी ही होती है।

अचला : (उत्सुकता से) क्यो? तुमसे प्रेम प्रदर्शित करती थी?

विद्याभूषण : (आश्चर्य से) प्रेम प्रदशित! अरे प्रेम दूर रहा, कभी बात भी न करती थी; कभी मेरी ओर देखती तक न थी। शायद जहाज में एक भी पैसिंजर ऐसा न होगा जिससे उसने घुल-घुल कर बातें न की हों? मेरे डैक पर घण्टों रहती थी, पर मैं...मैं तो उसका दुश्मन...सबसे बड़ा दुश्मन हूँ।

अचला : (आश्चर्य से) ऐं...ऐसा...ऐं.....

लघु—यवनिका

तीसरा : दृश्य

स्थान : जहाज में अचला का केबिन।

समय : उषा काल।

[विभावती एक सूटकेस पर खड़ी हुई गोल खिड़की के बाहर देख रही है। वह एक सुन्दर चटकीली और बहुमूल्य साड़ी तथा ब्लाउज़ पहने हुए है। अपने स्वर्ण के आभूषणों से भी सुसज्जित है। अचला शीशे के सामने खड़ी हुई बाल सँवार और गा रही है। अचला का मुख अत्यन्त प्रसन्न है। विभावती का मुख न दिखाई देने से उसकी मुद्रा कैसी है, यह जान नहीं पड़ता।]

गान

मन में मातृभूमि पर मान
हृदयाञ्जलि में भर कर लाई अतल-अतुल सम्मान
स्वर्ग छोड़ आयी सुरसरिता देख हिमालय का आह्लाद
चरणों पर रत्नाकर लौटा खोकर बन्धन का अवसाद
हरे भरे अवनी-अञ्चल में छुपने आया मलय समीर
रजनीगन्धा के सौरभ से सनी झूमतीतारक भीर

[बाल सँवार चुकने पर गाते हुए अब वह सूटकेस में से कपड़े निकलना आरंभ करती है, और एक अत्यन्त सादी साड़ी तथा ब्लाउस निकालती है।]

विभावती : (बाहर की ओर ही देखते हुए) अचला, अब भारतवर्ष की पृथ्वी के दर्शन होने लगे। "गायन्ति देवा कल गीतिकानि, धन्यास्तु ये भारतभूमि भागे।"

अचला : (साड़ी और ब्लाउज़ को छोड़ जल्दी से विभावती के निकट सूटकेस पर चढ़ते हुए) मैं..... मैं भी दर्शन करूँ, विभा बहन ! कैसी पुण्यभूमि है यह। इसी के लिए कहा है—

"गायन्ति देवा कल गीतिकानि, धन्यास्तु ये भारतभूमि भागे।"

[बाहर देखते हुए दोनों हाथ जोड़ नमन करती हैं।]

विभावती : अचला, अचला, कैसी . . .कैसी यह पृथ्वी है ? (गाती है)

गान

फूली सरसों की साड़ी पर छिड़क कमल-केसर-मकरन्द
पुलकित उर्वी, कोयल कूके, गुन गुन गाते मुखर मिलिन्द

श्यामल-घन-केशों में चपला चमकाती दामिनि सीमन्त
अलकों के वैभव बिखराते मुक्ता, भूपर, बरस अनन्त
शस्यश्यामला भूपर पड़ता रवि का ताप चन्द्र का हास
उज्वलता प्रतिबिम्बित करता कृषक हृदय में भर उल्लास

अचला : और सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ उत्पत्ति मनुष्य... मनुष्य भी यह यहाँ कैसे कैसे...कैसे कैसे हुए हैं। (गाती है)

गान

धन से भूषित, पूर्ण धान्य से, भर गोदी फल फूल लिये
धातु राग से रञ्जित कर-पद, मृग मद केसर तिलक दिये
नव किसलय की लाल चूनरी, मां का चिर-मंगलमय वेश
मन में सुख का, अभय शान्ति का, श्रद्धा का करता उन्मेष

विभावती : परन्तु आज,.....आज, बहन, आज तो यही भारत....यही भारत संसार का सब से पतित, सब से दलित, सब से गरीब देश है। और....और ऐसा होने पर भी हृदय में कितना ...कितना उत्साह है। कितनी...कितनी उमंग उठ रही है इसके दर्शन से।

अचला : (लौट कर साड़ी पहनते हुए) जन्मभूमि...जन्मभूमि है न, बहन।

विभावती : (बाहर ही की तरफ देखते हुए) पर कैसी...कैसी जन्मभूमि? सुखद जन्मभूमि नहीं, पर ऐसी जन्मभूमि जहाँ हमने दारुण दुःख पाये थे। जब हमारे बाप, भाई, रिश्तेदार इस रंग-बिरंगी पृथ्वी को छोड़ आफ्रिका की काली जमीन को गए तब वे कंकाल और सर्वथा कंकाल थे। वहाँ पहुँच कई तो मर मिटे और कई धनवान भी हो गए और आज...आज उसी जन्मभूमि के दर्शन कर, जहाँ हमें अगणित यातनाएँ सहने को मिलीं, कितना आनन्द, कितना हर्ष हो रहा है, कितना उत्साह, कितनी उमंगें उठ रही हैं? बहन, आज इस जहाज में कितने हृदय उछल रहे होंगे, कितने हृदय थिरक रहे होंगे, कितने हृदय नाच रहे होगे?

अचला : (जो साड़ी पहिन चुकी है और ब्लाउज पहिन उसके बटन लगा रही है) विभा बहन, संस्कृत में कहा नहीं है—"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"

विभावती : (अचला की ओर घूम कर) सचमुच ठीक कहा है, बहन।

(अचला की साड़ी और ब्लाउज़ को देख कर आश्चर्य से) यह....यह क्या क्या तुम यह साड़ी, यह ब्लाउज़ पहन कर बंबई में उतरोगी ?

अचला : (मुस्कराते हुए) क्यों......ठीक नहीं है ?

विभावती : ठीक ? इससे ज्यादा बेठीक कुछ हो ही नहीं सकता।

अचला : (जेवर का बाक्स खोलते हुए) तुमने कहा न, बहन, भारत सब से गरीब देश है। (गले से जड़ाऊ हार को उतार कर जेवर के बाक्स में रखते हुए) उसकी भूमि पर उसी वेश से पैर रखना चाहिए जैसा वह है। (कान से रिंग उतारती है।)

विभावती : (सूटकेस पर से उतर अचला के पास आते हुए और भी आश्चर्य से) और.....और जेवर भी उतार रही हो, नंगी बूची होकर उतरोगी ?

अचला : (मुस्कराते हुए) भारत नंगा हो गया है, विभा बहन, जेवर दूर रहे, वहाँ लोगों को शरीर ढाँकने को कपड़े नहीं मिलते, खाने को पेट भर भोजन नहीं मिलता।

विभावती : यह...यह तो ठीक है । पर....पर आफ्रिका के भारतीय मर्चेण्ट प्रिन्स की पुत्री पहले पहल जन्मभूमि को आ रही है। उसे लेने बार्फ पर न जाने कौन कौन आयँगे। तुम्हारे पिता ने न जाने किस किस को हिन्दुस्थान भर में केबिल भेजे हैं। हमें जहाज पर ही स्वागत के कितने वायरलेस मेसेज मिले हैं। भारत का कोई ऐसा भाग है, जहाँ से मेसेज न आये हों—'इंपीरियल इंडियन सिटीजनशिप एसोसियेशन', उसके सभापति, उसके मंत्री, उसके न जाने कितने सदस्य, महाराजा वीर विक्रम सिंह, नवाब आलीजाह काम शेर बहादुर खाँ, राजा शशिकुमार, मालिक सर नसरवान जी महरबान जी मैचबाक्सवाला, दीवान बहादुर वेंकटरम....रम....रम क्या नाम है, देखो रसन्ना अर्दराजू अटपैय्या, सरदार बहादुर सरदार गुरुबख्श सिंह, खान बहादुर नवाब दिलेर खाँ का, राव बहादुर पुरुषोत्तम सदाशिव करन्दी यावन्दी....नहीं नहीं....उँ हूँ हिन्दीकर का...और......और न जाने कितनों.....कितनों के।.....तुम्हारे ठहरने का इन्तजाम हिन्दुस्थान के सबसे बड़े होटल 'ताजमहल' में हुआ है, और तुम .....तुम...इस......इस तरह.....

अचला : (जो अब पूरी तौर पर तैयार है, एक सादी साड़ी एक सादा ब्लाउज़ पहने जेवरों से सर्वथा रहित, चप्पल पहन आखिरी सूटकेस को बन्द करते हुए) बहन विभा, मैंने बंबई उतर कर तुम्हें शुभसंवाद देने का निश्चय किया था, पर अब मुझसे नहीं रहा जाता। कल रात को विद्याभूषण से मिल कर मैंने अपने भावी जीवन की समस्या को सदा के लिए हल कर लिया है। मैं अब अमीरी का जीवन छोड़ गरीबी को गले लगाऊँगी। संपत्ति का उत्तराधिकार छोड़, श्रम कर अपनी जीविका चलाऊँगी। मुझे इन राजा, महाराजों व नवाबों के सच्चे गुणों से वंचित-लेकिन बहुरूपियों के सदृश बने हुए नकली राजा महाराजों, नवाबों, नाइट्स की वीरताओं से रहित झूठे नाइट्स, यथार्थ में अधिक से अधिक बुजदिल पर बहादुरी की दुमों से विभूषित दीवान बहादुरों, खान बहादुरों और राय बहादुरों से कोई ताल्लुक नहीं। जिस देश में लोगों को सूखे टुकड़े नहीं मिलते, वहाँ मैं ताजमहल होटल में ठहरने वाली नहीं हूँ। विद्याभूषण और मैं किसी झोपड़े में ठहर जायँगे और आज ही हम लोगों का विवाह हो जायगा।

[विभावती जो आश्चर्य से स्तंभित सी होकर अचला की तरफ मुँह खोले हुए एकटक देखती हुई उसका यह भाषण सुन रही थी, अचला के चुप होने पर उसी तरह खड़ी रहती है। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकलता। अचला उसकी यह मुद्रा देख, मुस्कुराते हुए उसकी ओर बढ़ती है।]

अचला : (प्यार से एक हल्की सी चपत विभावती के गाल पर मारते हुए) तुम तो मुँह फाड़े पथरीली नजर से इस तरह खड़ी-खड़ी मेरी तरफ देख रही हो मानों बंबई के किनारे पर लगता जहाज डूबने लगा है, और बचने का कोई उपाय नहीं बचा।

विभावती : (जोर से दीर्घ श्वास लेकर) नहीं बंबई में भयंकर भूकंप हुआ है, मैं वहाँ के सबसे बड़ी इमारत के नीचे दब गई हूँ। सारा शरीर तो दबा हुआ है पर गले से सिर तक बचा हुआ है और सिर की समझ में नहीं आता कि धड़ को निकाले कैसे। (कुछ ठहर कर) अचला, तुम मुझसे मजाक तो नहीं कर रही हो?

अचला : (गंभीरता से) जरा भी नहीं, मैंने जो कुछ तुमसे कहा है, उसका एक-एक शब्द सच है।

विभावती : (फिर दीर्घ श्वास लेकर) पर जानती हो तुम क्या करने जा रही हो?

अचला : खूब जानती हूँ। खूब समझ सोचकर ही करने जा रही हूँ। मैंने छुटपन में पिता जी की क्रूरताओं को खुद देखा है। मुझे वे याद हैं। उन्होंने संपत्ति बुरे-बुरे मार्गों से पैदा की है। ऐसी संपत्ति से सुखमय जीवन, घृणित, अत्यन्त घृणित जीवन है। ऐसे धन का उत्तराधिकार पाप...घोर पाप है।

विभावती : और मानती हो कि तुम्हारा नया जीवन सफलता पूर्वक चलने वाला है ?

अचला : अत्यन्त सफलतापूर्वक।

विभावती : हरगिज नहीं। (कुछ रुक कर) और एक बात...एक बात और भी सोची है ?

अचला : क्या ?

विभावती : (जल्दी जल्दी) तुमने मेरे...मेरे साथ विश्वासघात किया है। मैं तुम्हारे पिता जी को क्या लिखूंगी, उनसे क्या कहूँगी। उन्हें कैसे अपना मुँह..मुँह दिखाऊँगी ? ओह !....ओह ! ...

[विभावती कुर्सी पकड़ लेती है, नहीं तो शायद गिर पड़ती। अचला कुछ आश्चर्य से उसकी ओर देखती है।]

यवनिका

तीसरा अङ्क

पहला दृश्य

स्थान : बंबई में विद्याभूषण के फ्लैट का एक कमरा।

समय : तीसरा पहर।

[छोटा सा कमरा है। नीची सी छत है। दीवालें कलई से पुती हैं और छत में सीलिंग न होने के कारण, उसके पटाव की लकड़ी की कड़ियां दिखाई देती हैं। पीछे की दीवाल में एक खिड़की है और दाहिनी तरफ बाईं दीवाल में एक दरवाजा। खिड़की से बंबई नगर का जो हिस्सा दिखाई देता है, उससे जान पड़ता है कि फ्लैट किसी साधारण लोगों के रहने के क्वार्टर में है। दाहिनी तरफ का दरवाजा एक छोटे से बाथरूम में खुलता है। बाथरूम का फर्श चूने का है। एक छोटा सा नल लगा है तथा लकड़ी का एक पटा पड़ा है। बाईं ओर का दरवाजा सीढ़ियों पर खुलता है, जिससे जान पड़ता है कि कमरा दुमंजिले पर है। लकड़ी की कुछ छोटी छोटी सीढ़ियां इस दरवाजे से दिख पड़ती हैं। कमरे की छत से एक बिजली की बत्ती भूल रही है। जमीन के चारों तरफ का हिस्सा छोड़ बीच में एक दरी बिछी हुई है। एक ओर मिले हुए लोहे के दो पलंग हैं। जिन पर साधारण बिस्तरा, दूसरी तरफ एक गोल टेबिल के चारों ओर चार मामूली सी बेंत से बुनी हुई कुर्सियां रखी हैं। पीछे की दीवाल में एक भद्दी सी लकड़ी की आलमारी है और दूसरी ओर कपड़े रखने की अरगनी। बीच की खुली जगह में अचला बैठी हुई चरखा चला कर गा रही है। उसके पास कुछ पौनियां रखी हैं। सूत बहुत मोटा निकलता है, बार-बार टूटता है और उसे वह जोड़ती है, कभी-कभी झल्ला सी उठती है। वह एक मोटी सूती सफेद साड़ी तथा वैसा ही ब्लाउज़ पहिने है। हाथों में एक-एक काँच की चूड़ी के सिवा, शरीर पर कोई भूषण नहीं है। उसकी दाहिनी कलाई में एक पट्टी बँधी है। कमरे में बहुत सा सामान, साड़ी, ब्लाउज़, तौलिया, धोती, कमीज, आदि, इधर-उधर अव्यवस्थित रूप से पड़ा हुआ है, पर अरगनी खाली पड़ी है।]

गान

किसने यह संसार बनाया ?
उस निष्ठुर को कभी न व्यापी कोई ममता माया
आशंका सागर में डगमग डोली आशा नैया
आतुरता पतवार थमाई मन को बना खिवैया
तोड़ धैर्य, गाम्भीर्य, उमड़ती लोचन सरिता गहरी
रोक सके क्या पलक सींकचों से ये कोमल प्रहरी
हृदय-कमल की पंखुड़ियों में बन्द किया पीड़ा को
सह पाई वे क्षण भर उसकी वज्रमयी क्रीड़ा को ?
तीव्र ज्योति की प्रतिद्वंदिनी हाय बनाई छाया
किसने यह संसार बनाया ?

अचला : (हाथ की पौनी को पटकते हुए) नहीं....मुझ से न चलेगा... चरखा तो कभी न चलेगा।.....(निकले हुए सूत के कुछ हिस्से को तकुए पर से निकालते हुए जो निकलते-निकलते ही टूट जाता है) कैसा सूत निकला है। (सूत देखते हुए) इतना मोटा कि निवाड़.... निवाड़ भी नहीं बन सकती और... और इतना मोटा होने पर भी...कमजोर....कमजोर कितना है... निकलते.... निकलते....टूटता है। (पैर से चरखा हटाते हुए) न भाई....ना... मुझसे तुम न चलोगे... कभी भी नहीं... (खड़े होकर आलमारी खोलती है, जिसमें सामान बिना किसी व्यवस्था के भरा हुआ है) ढूंढ़ना होगा... ऐसे...ऐसे जंगल में कैसे ...मिलेंगी वे चीजें ? (ढूंढ़कर एक कैंची निकालते हुए) चलो कैंची तो मिली कपड़ा भी मिला, (फिर ढूंढ़कर एक किताब निकालते हुए जो बड़ी कठिनाई से मिलती है।) किताब भी मिल ही गई। (तीनों चीजों को लेकर आलमारी को वैसा ही खुला छोड़, टेबिल के नजदीक आकर, तीनों चीजों को टेबिल पर रख, किताब खोल, उसे गौर से देखते हुए) हाँ...हाँ...सलूका सो ही कटेगा। (कैंची ले कुरसी पर बैठ, कपड़ा टेबिल पर फैला, कभी किताब और कभी कपड़े को देखते हुए) यों... (और काट) यों...(और काट) यों...(और काट, किताब को देख) अर-र-र-र यह... यह तो कोई दूसरी ही चीज कट गई !... (काटना बन्द कर, कभी कटे हुए कपड़े और कभी किताब को देख उसके पन्ने उलटते हुए) क्या...

क्या कट गया ? . . . कुरता ? . . . पायजामा ? . . . कोट ? . . . फ्राक ? कुछ . . . कुछ भी तो नहीं दिखता ? (किताब पटकते हुए) न जाने कैसी . . . कैसी किताब है ? (थोड़ी देर चुप रह) तो . . . तो कटाई भी मुझसे न होगी ? (फिर आलमारी के पास जा, उसमें से ढूंढ़कर एक अधसिले सलूके और सुई डोरे को निकाल कर सलूके को देखते हुए) इतना . . . इतना तो महाराजन ने सिया था (कुरसी पर आकर बैठते हुए) आगे . . . आगे मुझे सीना है। (ध्यान से सुई के छेद को देख उसमें डोरा डालते हुए) पिरो तो लिया . . . शाबास ! अचला ! शाबास ! कल तक कई बार कोशिश करने पर भी न पिरो सकती थी, आज . . . आज पहिली ही बार के प्रयत्न में . . . सफल . . . हां . . . सी . . . सी सकूंगी मैं ? (सीना शुरू करती है) आ . . . आ . . . आ ! (कपड़े और सुई डोरे को टेबल पर पटक, एक उँगली को देख जिससे खून निकल रहा है) छिद गई . . . छिद गई . . . खून निकल रहा है। (बाथरूम में जाते हुए) आफत . . . आफत हो गई। (बाथरूम का नल खोल, उँगली धो, बाहर आती है; पैरों के पास उसकी साड़ी भीग गई है) कैसा . . . कैसा . . . बेहूदा नल है। . . . उँगली . . . उँगली धोने गई . . . और साड़ी . . . साड़ी भी भीग गई ? (कुछ रुक कर छिदी हुई उँगली को बार-बार मुंह में डाल और निकाल) यह सब . . . यह सब चले . . . चलेगा ?

[सीढ़ियों से महाराजन का प्रवेश। वह अधेड़ अवस्था की है, वेशभूषा से विधवा जान पड़ती है।]

महाराजन : मालकिन, शाम के लिए घी और भाजी नहीं है ?

अचला : (आश्चर्य से) घी नहीं है ?

महाराजन : हां, मालकिन !

अचला : क्यों, घी तो वे पन्द्रह दिन को लाये थे ? आठ ही दिन में खतम हो गया ?

महाराजन : पन्द्रह दिन तो चल जाता, मालकिन, पर . . . पर आपके रोटी बनाना सीखने में भी तो . . .

अचला : हां, हां, (हाथ की पट्टी देखते हुए) और सीखा यह। ऐसी जली कि तीन दिन हो चुके, पर जलन ही नहीं मिट रही है। (कुछ रुक कर) अच्छा उन्हें आ जाने दो। शाम के पहिले घी और भाजी आ जायगी।

[महाराजन का प्रस्थान]

अचला : (इधर-उधर घूमते हुए) ना . . . ना यह सब कभी नहीं. . .हरगिज नहीं चलेगा। (कुछ रुक कर) और क्यों . . .क्यों चले ? . . . सब कुछ होते हुए . . . हजारों लाखों नहीं, करोड़ों होते हुए भी यह सब. . .यह सब क्यों चलाया जाय ? . . . (कुछ रुक ठहर कर) इसी सम्पत्ति इसी दान. . . इन्हीं बातों की प्रतिष्ठा के कारण तो बम्बई के बार्फ पर मेरा इतना . . . इतना बड़ा स्वागत हुआ। . . . कितने बड़े बड़े . . . कितने प्रतिष्ठित-प्रतिष्ठित लोग मुझे लेने आये थे ? (कुछ रुक कर) कौन . . . कौन भूषण को लेने आया ? . . . और . . . और जब मैं ताजमहल. . . ताजमहल में न गई, तब . . . तब . . . और . . . और जब यह विवाहवृत्त पत्रों में छपा . . . तब . . . तब मेरी . . . मेरी इन बातों के कारण बदनामी ही हुई नेकनामी नहीं। (कुछ रुक कर) मैं पिता का घर छोड़ भागने वाली और भूषण. . .भूषण मुझे भगाने वाला समझा गया। (फिर कुछ रुक कर) यही . . . यही विवाह अगर आफ्रिका . . . आफ्रिका में होता ? किस तरह . . . किस प्रकार पिता जी इसे करना चाहते थे ? . . . आह ! . . . आह भूषण के इन वाहियात . . . वाहियात सिद्धान्तों ने सब. . .सब डुबो दिया. . . इतना . . .इतना ही नहीं. . .रोज. . .रोज की. . .चौबीसों घंटे की यह चकल्लस, यह कष्ट ! कहते हैं दैहिक सुखों के पीछे जीवन का पीछा करने से अधिक और कोई बुरी बात नहीं। होगा. . .होगा मैं दैहिक सुखों के पीछे पीछे नहीं भागती। पर. . . पर यह रोजमर्रा का खाने का कष्ट, पहिनने का कष्ट ! ... (अपनी साड़ी पर हाथ फेरते हुए) कितनी . . . कितनी मोटी. . . कितनी. . .कितनी खुरदरी है यह ? अभी. . .अभी भी इसे पहिने अच्छी तरह नींद नहीं आती . . . (चारों तरफ देख कर) और यह मकान . . . मकान क्या . . . चूहों के रहने का बिल है। (बाथरूम की ओर देख कर) . . . बाथ. . . .रूम है, या कोई गंदला गटर. . . ? (सीढ़ियों की तरफ देख कर) और. . .और यह जीना है या . . . या नसेनी ? बैठने, उठने, सामान रखने, (उँगली को घुमाते हुए और चारों तरफ देखते हुए) सब के लिये एक . . . यह एक कमरा है, अरे कमरा . . . क्या कोठरी . . . खोली। और खाना बनाने के लिए नीचे नाली . . . मैली नाली के पास. . .ही एक. . .क्या कहूँ . . . कोठरी . . . खोली तो बहुत . . . बहुत बड़ी होती है, शायद कोष में इस रसोईघर के लिए कोई . . . शब्द न होगा। . . . फिर. . .फिर खाना बनाने, नहलाने-

धुलाने झाड़ने-बुहारने, सारे...सारे कामों के लिए एक...एक नौकरानी? (कुछ ठहर कर) ट्राम पर चढ़ो,...चलती हुई पर...और उतरो...उतरो भी चलती हुई से।...मोटर...अरे रोल्स रायस तो दूर रही...फोर्ड भी नहीं। कई बार...कई बार तो ट्राम पर चढ़ते-उतरते...चढ़ते-उतरते...गिरती-गिरती ...हाँ, गिरती-गिरती बची! (लम्बी साँस लेकर) कहाँ आफ्रिका...आफ्रिका का वह...कहाँ वह जीवन...स्वर्गीय जीवन...और कहाँ...कहाँ बंबई का यह ...यह जीवन...नारकीय जीवन...और फिर...फिर दो चार दिन...दो चार महीने...दो चार वर्ष नहीं...सारी जिन्दगी...सारा समय इसी...इसी तरह। (कुछ रुक कर पलँग पर बैठते हुए) कैसा...कैसा...कारुणिक पिता जी का वह केबिल...केबिल था...और कैसा...कैसा कलेजा मुँह को लाने वाला उनका वह पत्र! वह...वह तो विभा के लौट कर जाने और सब हाल कहने की खबर के कारण रुक गये, नहीं तो...नहीं तो...आ ही रहे थे। (फिर कुछ ठहर कर) आयँगे...वे अवश्य आयेंगे।...आकर...आकर...भूषण...मुझे इस नरक से निकाल फिर स्वर्ग...फिर स्वर्ग में जाने को कहेंगे। (एकाएक खड़े होकर) पर... पर...मैं...मैं भूषण को छोड़ कर कैसे...कैसे जाऊँगी? (टहलते हुए) भूषण भी वहीं चले चलें? (कुछ रुक कर) पर वे कभी...कभी नहीं जायँगे। (फिर कुछ रुक कर) तब...तब...तब? (कुछ रुक कर गद्गद स्वर से) "अब घर तहां जहँ रामनिवा सू" (आँखों में आँसू भर कर) सहूँगी...प्राणनाथ...अब...सब कुछ सहूँगी और क्यों...क्यों न सहूँ तुम मुझे सुखी बनाने में किस...किस चीज की कमी रख रहे हो? कितना...कितना प्यार करते हो मुझे? कितनी...कितनी तारीफ करते हो मेरी? मैं...मैं तुम्हें...तुम्हें कभी...कभी नहीं छोड़ सकती? (कुछ रुक कर) और फिर जैसा वे कहते थे यथार्थ में कठिनाइयाँ...कठिनाइयाँ ही जीवन के युद्धस्थल हैं, और इन्हीं...इन्हीं में लड़ने से वीरता की वृद्धि होती है। साथ ही जीवन-निर्वाह...हाँ जीवन-निर्वाह की छोटी-छोटी कठिनाइयों से उनके मतानुसार कभी-कभी बड़े...बड़े काम हो जाते हैं।

[विद्याभूषण का प्रवेश]

विद्याभूषण : प्रिये! बड़ा शुभ संवाद देना है। (टोप उतार, उसे अरगनी पर रख, कुर्सी पर बैठता है, और लिफाफों को टेबिल पर रखता है।)

अचला : (दूसरी कुर्सी पर बैठते हुए) क्या किया ?

विद्याभूषण : लण्डन के "टाइम्स", "मैन्चिस्टर गार्जियन" और न्यूयार्क के "टाइम्स" ने हिन्दुस्थान पर मेरे भेजे हुए लेखों को छापना मंजूर किया है, और लिखा है कि छपते ही वे मेरा पुरस्कार भेज रहे हैं। आगे भी मुझे लेख भेजने के लिए लिखा है।

अचला : (प्रसन्नता से) सचमुच बड़ा शुभ संवाद है।

विद्याभूषण : पर जानती हो जानती हो इसका सबब, डार्लिंग ?

अचला : क्या ?

विद्याभूषण : तुम इसका कारण हो, डियर।

अचला : जी हां, मैंने लेख लिखे हैं न ?

विद्याभूषण : तुमने न लिखे हों, (एकटक अचला की ओर देखते हुए) पर तुम्हारे कारण मैं लिख सका हूँ (कुछ रुक कर) देखो आफ्रिका से जब मैं भारत आ रहा था, उस वक्त आफ्रिका के भारतीयों की हालत पर एक लेख लिखने की कोशिश की थी, पर ऐसा रद्दी लेख लिखा गया कि वहीं फाड़कर फेंक दिया। हिन्दुस्थान के अखबारों में मेरे जिन लेखों के कारण, मेरी धूम मची थी, वे भी, तुम्हारे हृदय से लगने के बाद...

अचला : चलो रोज यों ही मेरी कोई न कोई तारीफ किया करते हो।

विद्याभूषण : अच्छी बात है, अभी नहीं मानती तो न मानों, तब मानोगी जब मुझे थोड़े ही दिनों में "नोबल प्राइज" मिलेगी।

अचला : (आश्चर्य से) नोबल प्राइज की कोशिश करने वाले हो ?

विद्याभूषण : क्यों, आदमियों को ही यह मिलती है या और किसी को ? तुम्हारे मिलने के बाद भी यह कोशिश न करूँगा ? आज ही हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में एक बड़ा सा ड्रामा शुरू करने वाला हूँ (कपड़ों को चारों तरफ देख खड़े हो करके कपड़ों को उठाते हुए) अच्छा यह तो कहो...

अचला : (विद्याभूषण को कपड़े उठाते देख, जल्दी से खुद कपड़े उठाते हुए, उसे रोक कर) यह तुम्हारा काम नहीं है।

विद्याभूषण : (न मानते हुए अचला की साड़ी चुनते हुए) सब मेरा काम है।

मजदूर काम करते हैं, शाहजादियाँ नहीं ! तुम . . .तुम बस, सिर्फ मेरे हृदय की अधिष्ठात्री देवी भर बनी रहो ! मैं . . .

अचला : (अपनी साड़ी को जबरदस्ती विद्याभूषण के हाथों से छुड़ाते हुए) कसम है तुम्हें, कसम है खबरदार, अगर किसी चीज को हाथ लगाया। (विद्याभूषण रुक जाता है) यह मेरा काम है। (गिड़गिड़ाते हुए, जल्दी-जल्दी कुछ कपड़ों को अरगनी पर रख) आदत नहीं है, इसीलिए ये सारी अव्यवस्थाएं हो जाती हैं। धीरे धीरे . . .

विद्याभूषण : नहीं, नहीं, इसमें तुम्हारी कोई गलती नहीं। एक ही कमरा तो है, ठीक कैसे रहे ? नौकरानी भी एक ही है। अगले महीने में इन लेखों का पुरस्कार आते ही, हम बड़ा मकान लेंगे। एक नौकर और बढ़ा लेंगे। और फिर धीरे-धीरे आमदनी बढ़ती ही जायगी (कुछ रुक कर) और देखो, किसी को कष्ट देकर, किसी का पसीना आँसू या खून बहा कर यह आमदनी न होगी ? किसी बुरे रास्ते से नहीं, अच्छे मार्ग से, अच्छे रास्ते से, किसी उत्तराधिकार के कारण नहीं, खुद श्रम करके !

अचला : (कुछ कपड़े आलमारी में रखते हुए) इसमें क्या शक है (आलमारी बन्द करते हुए) इसमें क्या शक है !

[दोनों फिर कुर्सियों पर बैठते हैं]

विद्याभूषण : अचला, तुम्हें यहां कष्ट तो है ही पर असह्य. . . असह्य तो नहीं ?

अचला : क्या कहते हो, डार्लिंग, एक तो कष्ट ही नहीं, फिर तुम्हारे रहते, कष्ट का अनुभव हो सकता है ? (कुछ रुक कर) अच्छा देखो, मुझे पैसा चाहिए। घी और भाजी मँगाना है।

विद्याभूषण : घी . . .घी तो अभी आया था न ?

अचला : हां . . .पर मेरे रसोई बनाना सीखने में बहुत सा लग गया है।

विद्याभूषण : (मुस्कराते हुए हाथ की ओर इशारा करके) और सीखा इस तरह गया [क्यों ?

अचला : (शर्माते हुए) क्या कहूँ ?

विद्याभूषण : (जेब से मनीबेग निकाल पाँच रुपये का एक नोट निकालते हुए) तुम यह सब मत करो, जरूरत ही नहीं है। (नोट देता है।)

अचला : (नोट लेते हुए) अच्छा, तो मैं जरा बाजार हो आती हूँ !

विद्याभूषण : (आश्चर्य से) तुम खुद जाओगी ?

अचला : मैंने तय किया है कि मेरा काम मुझे खुद करना चाहिए और तुम्हारा तुम्हें ।

विद्याभूषण : (मुस्करा कर) अभी कपड़ा उठाते उठाते यह मसला नया हुआ होगा ?

अचला : (दृढ़ता से) जी हां !

विद्याभूषण : पर यह सौदा लाना तो महाराजन का काम है।

अचला : नौकर लूटते हैं।

विद्याभूषण : यह भी पता लग गया ?

अचला : मूर्ख थोड़े ही हूँ, धीरे-धीरे सब जानती जा रही हूँ।

विद्याभूषण : अच्छी बात है, "गृहणी गृहमुच्यते बुधैः" (मुस्करा कर) गृहणी महोदया, आप बाजार हो आवें, पर कृपा कर महाराजन को साथ लेती जाइयेगा, नहीं तो कहीं चलती ट्राम में बैठते उतरते चोट आगई तो मुझे अस्पताल आना होगा, या कहीं रास्ता भूल गईं तो पुलिस स्टेशन जाना होगा।

अचला : (मुस्कराते हुए और नीचे जाते हुए) नहीं, नहीं, अब मैं ट्राम पर चढ़ लेती हूँ, और रास्ता भी नहीं भूलती हूँ।

विद्याभूषण : (जोर से) जरा जल्दी आना अँधेरा हो गया और मैं मकान में अकेला रहा तो मुझे डर लगेगा।

[नेपथ्य में अचला की जोर की हँसी सुन पड़ती है। कुछ देर चुपचाप गंभीरता से सोचते हुए विद्याभूषण जेब से एक नोटबुक निकालता है, और टेबिल पर रखता है। उसको खोल फाउण्टैनपेन निकाल कुछ सोचता है।]

विद्याभूषण : (फाउण्टैनपेन दोनों हथेलियों के बीच घुमाते हुए और गंभीरता से कुछ देर तक सोचने के बाद) नाटक का नाम...नाम...नाम होना चाहिए "गरीबी या अमीरी" (नोटबुक में लिखते हुए) ठीक...ठीक (फिर कुछ देर उसी तरह सोचते हुए) और एक...और एक नाम...श्रम या उत्तराधिकार... बिलकुल ठीक...(नोटबुक में लिखता है फिर कुछ देर उसी तरह सोचते हुए) पात्रों...पात्र नंबर एक...नंबर एक लक्ष्मी...लक्ष्मीदास ...

[लक्ष्मीदास सीढ़ियों पर चढ़ते हुए आता है। वह अपनी साधारण वेषभूषा

में है। लक्ष्मीदास के आने की आहट पाकर विद्याभूषण जीने की ओर देखता है। लक्ष्मीदास को आता देख वह अत्यन्त आश्चर्य से खड़ा हो जाता है। लक्ष्मीदास का प्रवेश। विद्याभूषण आगे बढ़ता है, पर प्रणाम इत्यादि कुछ नहीं करता। लक्ष्मीदास आगे बढ़ उसके कन्धे को थपथपाता है। और एक कुर्सी पर बैठ जाता है। विद्याभूषण खड़ा रहता है। मानो उसकी समझ में नहीं आता कि वह क्या करेगा।]

लक्ष्मीदास : बैठो, विद्याभूषण।

[विद्याभूषण हठात् चुपचाप बैठ जाता है, पर कुछ बोलता नहीं। वह नोटबुक बन्द करता और फाउण्टेनपेन को भी बन्द कर जेब में रखता है, मानों कुछ करना उसके लिये अनिवार्य है। और इसके सिवा वह करे क्या यह उसकी समझ में नहीं आता।]

लक्ष्मीदास : (लंबी साँस लेकर) मैं आज ही जहाज से उतरा हूं, विद्याभूषण !

[विद्याभूषण कुछ न कह कर, लक्ष्मीदास की ओर देखता है।]

लक्ष्मीदास : (आँखों में आँसू भर कर) अचला अच्छी है ?

विद्याभूषण : (कठिनता से) जी हां। (कुछ रुक कर) आपने हम लोगों को आने की खबर नहीं दी, नहीं तो हम लोग वार्फ पर आते !

[लक्ष्मीदास कुछ देर चुप रहता है। विद्याभूषण उसकी ओर देखता रहता है।]

लक्ष्मीदास : कहाँ है अचला ?

विद्याभूषण : बाजार सौदा लेने गई है, आती ही होगी ?

लक्ष्मीदास : (आश्चर्य से) बाजार सौदा लेने गई है ?

विद्याभूषण : क्यों, सौदा लेने जाना कोई पाप है ?

[लक्ष्मीदास चुप रहता है, और दूसरी तरफ देखने लगता है। विद्याभूषण उसकी ओर देखता रहता है।]

लक्ष्मीदास : (विद्याभूषण की तरफ देखते हुए) विद्याभूषण जानते हो मैं किससे मिलने आया हूँ ?

विद्याभूषण : होना तो यहीं चाहिए, हां, यदि बिजनेस के लिए किसी अंग्रेज से मिलने की जरूरत हो तो अलग बात है।

लक्ष्मीदास : नहीं, विद्याभूषण ! तुमसे मिलने आया हूँ, अचला को सिर्फ देखने आया हूँ, पर मिलने तुमसे आया हूँ।

विद्याभूषण : (कुछ आश्चर्य से) मुझसे मिलने आये हैं, आपसे और मुझसे मतलब ?

लक्ष्मीदास : (दुख की मुस्कराहट से मुस्करा कर) मतलब, विद्याभूषण ? बड़ा, बहुत बड़ा मतलब है।.....तुम्हारा.....तुम्हारा चाहे मुझसे मतलब न होगा, पर मेरा तुमसे मतलब जरूर है। तुम्हें....तुम्हें कदाचित् वह अभी समझ में भी न आता होगा, क्योंकि अभी...अभी तुम सिर्फ पति हुए हो, पिता नहीं... और....और फिर एकमात्र संतान के पिता नहीं,...ऐसे...ऐसे....ऐसे पिता नहीं, जिसका अवलंब, जिसकी बुढ़ापे की लाठी सिर्फ उसकी संतान हो, जिसने सब कुछ अपनी संतान के लिए किया हो, जो उसी के लिए जीता हो, जिसका मन उसी के लिए सोचता हो, और जिसका शरीर उसी के लिए हर एक हरकत करता हो ?

विद्याभूषण : तो अपनी संतान से मिल लीजिये, वह आती ही होगी ? पर मुझसे आपसे क्या मतलब है ?

लक्ष्मीदास : उसे देख लूँगा, विद्याभूषण, देखने से सन्तोष भी होगा पर मतलब.....मतलब तो तुम्हीं से है, ...क्योंकि...क्योंकि उसका सारा सुख-दुख, उसका समस्त जीवन अब तुम पर निर्भर है।

विद्याभूषण : (कुछ देर चुप रहने के बाद) तो मुझसे आप क्या चाहते हैं ? आप चाहते हैं कि मैं उसे आपके पास भेज दूँ ? मुझे कोई आपत्ति नहीं। अगर वह जाये तो आप उसे ले जा सकते हैं।

लक्ष्मीदास : मैं उसे साथ ले जाने के लिए नहीं, पर उसे तुम्हारे साथ सुख से जीवन व्यतीत करने के लिए समर्थ बनाने आया हूँ।

विद्याभूषण : (सिर हिलाते हुए) ओ ऐसा ! तो आप अपनी संपत्ति का कुछ हिस्सा उसे देना चाहते हैं ?

लक्ष्मीदास : उसे और तुम्हें दोनो को, विद्याभूषण, और कुछ हिस्सा नहीं, सारी की सारी संपत्ति। उसे और तुम्हें कुछ हिस्सा देकर शेष दूँगा किसको ? मेरा और है कौन ?

विद्याभूषण : मैं तो उस संपत्ति की एक फूटी कौड़ी भी नहीं छू सकता, वह ले, तो आप दे सकते हैं, मैं बीच में आने वाला कौन ?

लक्ष्मीदास : विद्याभूषण तुम उसके पति हो और मेरे दामाद। दामाद और लड़के में कोई फर्क नहीं होता। (विद्याभूषण का कंधा थपथपाते हुए) मेरा तुम पर भी अब हक हो गया है।

विद्याभूषण : रिश्तेदारी और आर्थिक बातों का, आपस में, मैं कोई सम्बन्ध नहीं मानता।

लक्ष्मीदास : (कुछ विचारते हुए) यही सही, लेकिन . . .लेकिन . . . (कुछ रुक कर सिगरेट केस जेब से निकाल कर सिगरेट जलाते हुए) देखो, विद्याभूषण मेरी संपत्ति को तुम दूषित क्यों मानते हो ? इस विषय में अचला मुझसे सब कुछ कह चुकी है। पर मैं तुम्हें सुबूत देने आया हूँ कि तुम्हारा यह ख्याल गलत है। (सिगरेट का कश जोर से खींच) तुम मेरा सारा हिसाब-किताब देखो। इतना ही नहीं, तुम जिन्हें भी चाहो जाँच के लिए मुकर्रर कर सकते हो, वे मेरा सारा हिसाब-किताब देखें। यों तो दुनियाँ में कोई ऐसा रोजगार धन्धा नहीं है जिसके खिलाफ किसी न किसी. छोटे या बड़े फिरके को कुछ भी कहने को न हो, परन्तु याद रक्खो, कि बड़े बड़े साम्राज्यों का यथार्थ में रोजगारियों ने संचालन किया है, बादशाहों, वजीरों, और सेनापतियों ने नहीं। हाँ, मेरे रोजगार के सम्बन्ध में यह जरूर देख लो कि कानून और नीति दोनों की दृष्टि से, मैं अपने सारे रोजगार धन्धों में, ईमानदार . . .पूरा पूरा ईमानदार रहा हूँ या नहीं। (सिगरेट का धुआँ छोड़ते हुए) जिनसे मैंने काम लिया उनको पूरी पूरी, निर्ख से भी ज्यादा, मजदूरी दी है या नहीं। इतना ही नहीं, मैंने जितना कमाया उसका कितना हिस्सा दान, पुण्य, सत्कार्यों . . .

विद्याभूषण : (बीच ही में) मैं समझता हूँ। आप इतनी लम्बी स्पीच देकर अपना और मेरा समय व्यर्थ के लिए खो रहे हैं। न मुझे आपका हिसाब-किताब देखना है और न किसी को इस काम के लिए मुकर्रर करना है। यह मेरा दृढ़ और अन्तिम निश्चय है कि मैं उस संपत्ति से फूटी कौड़ी न लूँगा हाँ, आपकी लड़की के लिए मेरा कुछ कहना नहीं है।

[लक्ष्मीदास सिर नीचा कर लेता है। विद्याभुषण उसकी तरफ देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

लक्ष्मीदास : (सिर उठाते हुए धीरे से) विद्याभूषण, जो कुछ तुम कर रहे हो इससे बड़ी और कोई गलती संसार में नहीं हो सकती। मैंने दुनियाँ देखी है, उसके आदमी देखे हैं, अच्छा बुरा वक्त देखा है। और...और.. अपने अनुभव के आधार पर मैं तुमसे कह सकता हूँ कि जवानी का यह जोश खत्म हो जाने पर तुम स्वयं पछताओगे और तुम्हें खुद मालूम होगा कि तुमने कितनी बड़ी भूल की थी।

विद्याभूषण : (घृणा से मुस्करा कर) और बिना धन के जो अगणित मनुष्य अपना जीवन बिता रहे हैं वे दिन रात पछताते होंगे ?

लक्ष्मीदास : वह दूसरी, बिलकुल दूसरी बात है, जिन्हें उसके प्राप्त होने की बिलकुल ही उम्मीद नहीं, उनके पछताने का सवाल नहीं उठता। तुम तो खाली थाल नहीं, परोसे हुए थाल को लात मार रहे हो।

विद्याभूषण : मैं अपने खाली थाल परोसने की हिम्मत रखता हूँ।

लक्ष्मीदास : खुशी की बात है पर...पर एक बात कहूँ, नाराज न होना, यह हिम्मत इसलिए है कि कुछ पढ़ लिख लिया है, और वह पढ़ा-लिखा उस स्कालरशिप की बदौलत है जो कि मुझ सदृश ही एक धनवान के पैसों से दी गई थी। (जोर से सिगरेट का कश खींच) उसने....उसने भी वह धन मेरे समान.... मेरे सदृश ही उपायों को काम में लाकर कमाया था। अगर उसका धन ग्रहण करने के लायक था, तो मेरा भी अस्पृश्य...अस्पृश्य...

[अचला एक टोकनी में साग-भाजी लिए हुए सीढ़ियों पर चढ़ती हुई आती है, और लक्ष्मीदास पर दृष्टि पड़ते ही वह इतनी जल्दी चढ़ने की कोशिश करती है कि उसे सीढ़ी की ठोकर लगती है, वह गिरते गिरते बच जाती है, पर टोकरी गिर पड़ती है, साग-भाजी फैल जाती है, पर इनकी कोई परवाह न कर अचला जल्दी से सँभल बाकी रही हुई सीढ़ियों पर जल्दी से चढ़, शेष स्थान पर दौड़ कर "पिता जी" "पिता जी" कहती हुई लक्ष्मीदास से लिपट जाती है। लक्ष्मीदास जो अचला का शब्द सुन, खड़ा होकर, सिगरेट फेंक, थोड़ा आगे बढ़ा था "वैल" "वैल" कहते हुए अचला की पीठ पर हाथ फेरता है। उसकी आँखों से अश्रुधारा बह निकलती है। कुछ देर दोनों इसी तरह खड़े रहते हैं। इसी बीच विद्याभूषण अपना टोप उठा कर नीचे उतर जाता है।]

अचला : (रोते हुए) पिताजी,......पिताजी, आप अपनी....बुरी...इतनी बुरी बेटी? के लिये इतनी...इतनी दूर...

लक्ष्मीदास : (गद्गद स्वर से) ...क्या...क्या कहती है, बेटा?...बुरी बेटी?...बुरी बेटी? मेरी सब कुछ...मेरी सर्वस्व...बुरी...तू बुरी!

अचला : पिताजी, आप बूढ़े हैं...इस वक्त इस देश में आग...आग बरस रही है। दक्षिण आफ्रिका में इतनी गरमी नहीं होती।

लक्ष्मीदास : पर जानती है, जब से तू आई थी मेरे हृदय में आग...आग लगी हुई थी वह आज ठंडी हो गई है।

[दोनों कुर्सियों पर बैठते हैं।]

अचला : (आँसू पोंछते हुए कुछ शान्ति से) पिताजी, अपने अपने आने की खबर तक न दी, अखबार में भी मैंने आपकी रवानगी का हाल नहीं पढ़ा। आफ्रिका से आनेवाले मामूली मामूली आदमियों की रवानगी का हाल आता है।

लक्ष्मीदास : यह मौका..मौका ही ऐसा था बेटी, मैंने अपना आना गुप्त रखा है।

अचला : (कुछ सोचते हुए) हां...हां पिताजी, मेरे कारण आपको चोरों के सदृश आना पड़ा! (कुछ रुक कर) हाय!...हाय! मैंने क्या...क्या किया? (आँखों में आँसू भर आते हैं।)

लक्ष्मीदास : कुछ नहीं, जो हो गया वह हो गया। उस पर विचार नहीं किया जाता। मैं भूत पर सोच करने यहाँ नहीं आया हूँ, भविष्य पर विचार करने आया हूँ।

अचला : (आँसू बहाते हुए उठ कर फिर लक्ष्मीदास से लिपट कर) कितने...कितने अच्छे हैं आप पिताजी, मैं तो डर रही थी कि मेरे लिये न जाने आप क्या सोचते होंगे? जब मिलूँगी तब मुझे न जाने क्या क्या कहेंगे?

लक्ष्मीदास : सोचता—तुम्हारे लिये क्या सोचता होऊँगा? (कुछ रुक कर) तेरे लिए एक..एक ही बात सोच सकता हूँ, बेटी, तू सुख से कैसे रहे? और...और तुझे कहूँगा क्या? इन बातों पर कभी कुछ कहा सुना जा सकता है। बेटा, मैंने बाल धूप में सफेद नहीं किये हैं।

[कुछ देर दोनों चुप रहते हैं। अचला फिर अपनी कुर्सी पर बैठती है।]

लक्ष्मीदास : (चारों तरफ देख कर) बेटा, इस मकान में तू कैसे रहती है ? (उठ कर बाथरूम के पास जा उसे देखते हुए, अचला भी पीछे-पीछे जाती है।) यह बाथरूम है ? वाह वाह ? इसमें...इसमें तू कैसे नहाती है ? (कुछ रुक कर चारों तरफ घूमते हुए पलंग के पास जाकर) ये लोहे के पलंग तो गड़ते होंगे, बेटी ? (फिर इधर उधर घूमते हुए) और खाने का क्या इंतजाम है ? बेटी हाथ से भोजन बनाती है ? (कुछ रुक कर) सौदा लेने तो बाजार जाती है ही। पैदल ? क्यों (अचला की तरफ देख कर) और यह कैसी...कैसी साड़ी पहने है ? सारा शरीर छिल गया होगा, बेटी ? तुझे कितना...कितना कष्ट...

अचला : (जो अभी तक इसलिये न बोल सकी थी कि अपने को संभालने की काशिश कर रही थी, और मुख पर इस स्ट्रगल के भाव स्पष्ट दिखाई दे रहे थे और जो अब अपने को सँभाल चुकी है।) नहीं, पिता जी, मैं बड़े...बड़े सुख में हूँ। इस हमारे देश में अगणित दरख्तों के नीचे ही पड़े रहते हैं, उन्हें खाने को चने भी नहीं मिलते, शरीर ढाँकने को टाट भी...

लक्ष्मीदास : (कुरसी पर बैठते हुए)...उँह...छोड़ इन वाहियात बातों को। अगणित ?...अरे ये अगणित हमेशा ही ऐसे रहे हैं, और सदा ऐसे ही रहेंगे। मेरे सामने इन अगणित का सवाल नहीं, तेरा प्रश्न है।

[अचला कोई उत्तर न दे चुपचाप दूसरी कुरसी पर बैठ जाती है। लक्ष्मीदास सिर झुकाकर कुछ सोचता रहता है। अचला उसकी तरफ देखती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

लक्ष्मीदास : (धीरे धीरे सिर उठा कर) मैं ठीक करके लौटूंगा, बहुत कर तुम्हें साथ लेकर।

अचला : लेकिन पिताजी, उनके...उनके बिना मैं अकेली अब...(चुप हो जाती है।)

लक्ष्मीदास : यह तो मैं जानता हूँ, बेटी, अकेली कैसे ? विद्याभूषण भी साथ चलेगा। मैंने उससे बातें शुरू कर दी हैं।

अचला : (अत्यन्त उत्सुकता से) और उन्होंने क्या कहा, पिता जी ?

लक्ष्मीदास : अभी तो वे ही वाहियात बातें, पर मुझे उम्मीद है कि वह ठीक

हो जायगा, जाने पर राजी न हुआ तो यहीं मैं तुम्हारे और उसके रहने का अच्छा प्रबंध कर दूँगा। (कुछ रुक कर) और उसने मुझसे कुछ लेना मंजूर अगर नहीं किया तो भी तुम मुझसे कुछ न लो यह तो वह कभी भी नहीं कह सकता।

अचला : पर उनका कुछ न लेने पर मेरा...मेरा आपसे कुछ लेना... ...(फिर चुप हो जाती है।)

लक्ष्मीदास : उसकी रजामन्दी से ?

अचला : (कुछ देर चुप रहने के बाद) पर...पर पिता जी, उस...उस रजामन्दी का कोई...कोई अर्थ नहीं होता..इससे तो मेरे और उनके हृदयों के बीच में उस...उस धन का एक पर्दा...पर्दा क्या एक दीवाल ...दीवाल खड़ी...(फिर चुप हो जाती है)

लक्ष्मीदास : (खड़े होकर एक सिगरेट जला बेचैनी से इधर-उधर टहलते हुए कुछ देर बाद) देख...देख...अभी देख तो...मैं सारा...प्रबन्ध करके ...करके मानूँगा !

[लक्ष्मीदास : इधर-उधर टहलते हुए दाहिने हाथ के अँगूठे और तर्जनी को आपस में इस तरह घिसता है मानों दोनों के बीच में रुपया लिये हुए हो। अचला उसके पीछे-पीछे घूमती है।]

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थानः : वही।

समय : प्रातः काल।

[नौ बज जाने पर भी विद्याभूषण स्लीपिंग सूट और गाउन ही पहने, एक कुरसी पर बैठे हुए टेबिल पर के कुछ कागजों को देख रहा है। उसकी दोनों कहु-नियाँ टेबिल पर हैं और हाथों पर मुख। हम पहिले पहल उसके मुँह में सिगरेट देखते हैं। उसकी मुद्रा से अत्यधिक उद्विग्नता दृष्टिगोचर होती है। फर्श पर कुछ पिये हुए सिगरेट के टुकड़े तथा राख पड़ी है। कुछ देर तक वह उसी तरह बैठा हुआ कागज पढ़ता रहता है फिर एकाएक कागजों को जोर से जमीन पर पटक खड़ा हो, बड़बड़ाते हुये इधर-उधर घूमने लगता है।]

विद्याभूषण : एक पेज...एक पेज भी ठीक तरह नहीं लिखा जाता। पेज...पेज क्या एक पैराग्राफ और एक लाइन...एक लाइन तक नहीं? (खड़े हो सिगरेट को मुँह से निकाल उसे देखते हुए) पढ़ा और सुना था कि तुझसे ...तुझसे कई लोगों को विचारने और लिखने में बड़ी...बड़ी सहायता मिलती है। इसी लिये तेरी...तेरी शरण भी ली, पर...पर मुझे...मुझे तो कोई.. कोई मदद न मिली। हाँ, तेरा नंबर जरूर बढ़ता जाता है—'बाइ लीप्स एण्ड बाउण्ड्स' और तेरे धुंवे के साथ पैसा—पैसा भी उड़ रहा है...तेरी राख... राख के साथ उसकी...उसकी राख भी हो रही है। (एक ज़ोर का कश खींच फिर इधर-उधर घूमते हुए) नोबल प्राइज लेने चला था। पर...नाटक, नावेल तो दूर रहा, कोई अच्छी कहानी...लेख...लेख तक नहीं लिखा जा रहा है। जो किसी तरह...किसी प्रकार मर पच कर पूरे...पूरे भी किये वे...वे भी लण्डन और न्यूयार्क से ही वापस आये हों, यह नहीं,..हिन्दुस्थान...हिन्दुस्थान के पत्रों तक ने लौटा दिये। (फिर कुरसी पर बैठ कर एक और जोर का कश खींच) लिखा...लिखा जावे कहाँ से?...लिखने के लिये शान्ति...शान्ति चाहिये और...और चाहिये उत्साह। फिर अवकाश भी चाहिए।...यहाँ तो तीनों ...तीनों गायब। इतना...इतना ही नहीं...इन तीनों की जगह, एक... नयी चीज ने ले ली है...कलह ने। (फिर घूमते हुए, कुछ ठहर कर) जबसे... जबसे वह लक्ष्मी...लक्ष्मीदास आकर लौटा तभी...तभी से अचला के व्यव-हार में फर्क पड़ गया था...पर...पर कलह...कलह शुरू हुआ इस बच्चे.. इस बच्चे के होने पर। ..कैसा रोगी...रोगी हुआ है यह? सारी शान्ति नष्ट हो गई है। दिन रात...रात दिन...लून, तेल, लकड़ी और ...लून, तेल, लकड़ी ही नहीं डाक्टर तथा दवा...दवा तथा डाक्टर का प्रबंध...प्रबंध करते करते दूसरे...दूसरे काम के लिये किसे अवकाश? ऐसी...ऐसी हालत में उत्साह...उत्साह से यदि दुश्मनी हो जाय तो, ताज्जुब की...हाँ ताज्जुब की कौन सी बात है? (कुरसी पर बैठकर कागजों को टेबिल पर रख फिर एक जोर का कश खींच कागज को देखते हुए) पर...काम...काम तो करना ही होगा। मेरे पास जमीन जायदाद थोड़े ही है, कि बैलों का हल चले, यहाँ तो कागज... कागज ही जमीन और कलम...ही हल है। (कुछ देर चुप रहने के बाद) पर...

पर आदमी तब तक काम कर...कर नहीं सकता जब तक दुनिया उसके काम को उपयोगी...हाँ, उपयोगी और जरूरी हाँ, जरूरी भी न समझे। "स्वान्तः सुखाय" कहने की,...हाँ, केवल कहने की चीज है। एक...एक भी तो भाव...ठीक भाव नहीं उठ रहा है...एक...एक भी तो शब्द...ठीक शब्द नहीं सूझ रहा है। (फिर चुप होकर कुछ देर कागजों को देख, एकाएक उन्हें फाड़कर फेंकते हुए खड़े हो जोर से) नहीं...नहीं होगा! नहीं..नही होगा। मुझ से अब न लिखा जायगा...एक हरफ नहीं। (उस सिगरेट के खत्म होने के कारण, जेब से सिगरेट केस निकाल दूसरा सिगरेट उसी सिगरेट से जला, पहिले सिगरेट को यहीं जमीन पर फेंक इधर-उधर घूमते हुए कुछ देर बाद) पर क्यों...क्यों यह कष्ट पा रहा हूँ? क्यों...क्यों अपना कैरियर...कैरियर भी बर्बाद कर रहा हूँ। हजारों, लाखों की नहीं, करोड़ों...हाँ हाँ, करोड़ों की संपत्ति सामने है। वह...वह भी बिना...बिना किसी श्रम प्राप्त हो सकती है। बिना... बिना किसी खुशामद...खुशामद के मिल सकती है। नहीं, नहीं उल्टी...उल्टी बात है, मेरी...मेरी खुशामद हो रही है कि मैं उसे लूँ। (जोर का एक कश खींच कुछ देर चुप रह कर) उस लक्ष्मीदास ने ऐसी कौन...कौन सी अनुनय-विनय...आरजू-मिन्नत है जो न की हो? अरे...अपना टोप...टोप तक उतार कर मेरे पैरों हाँ मेरे पैरों में रख दिया था।...और जब असफल... असफल होकर लौटा...तब कैसा...कैसा रोता, कैसा..कैसा बिलखता था? (कुछ देर चुप रह जल्दी घूमते हुए) पर...पर उसने...उसने, कितनों.. को रुला कर, कितनों...कितनों को बिलखा कर, इतना...इतना ही नहीं.. कितनों का खून बहा कर...माँस और हड्डियाँ सुखा कर...उस संपत्ति को पैदा किया है।...मैं कैसे कैसे उसे ग्रहण कर सकता हूँ। (फिर से एक जोर का कश खींच कर) लेकिन...लेकिन जैसा वह कहता था स्का...लर...शिप? (कुछ रुक कर) पर वह...वह दूसरी...दूसरी...बिलकुल दूसरी बात थी। (एकाएक खड़े हो विचारते हुए) दसरी...दूसरी क्या...कौनसी दूसरी बात थी? (फिर घूमते हुए) यह...यह तो सच है कि वह...वह धन भी ऐसे...ऐसे ही क्रूर क्रूरतम उपायों से उपार्जित किया गया था। (फिर एक कश खींच कर) पर...पर...क्या पर?...(फिर कुछ रुक कर) पर यह कि

कमा कर उसके बदले...उतनी...उतनी ही स्कालरशिप किसी स्टूडैण्ट को मैं दे दूँगा। (जल्दी जल्दी घूमते हुए) लेकिन कमाई...कमाई होगी भी, और.. और अगर हुई भी तो...तो क्या उतनी ही स्कालरशिप दे देने से उसका पूरा.. पूरा बदला चुक जायगा?...मैं उससे उऋण हो जाऊँगा?...अरे...(एका-एक खड़े होकर) मेरा तो सारा जीवन...सारा काम, उसी...उसी स्कालरशिप ...हाँ उसी स्कालरशिप की नींव पर जो खड़ा है। और मनुष्य एक...एक ही बार जो पैदा होता है, और जीकर मर...मर जाता है। (फिर घूमते हुए) ...फिर? ...तब?

[अचला जल्दी-जल्दी जीने पर चढ़ कर आती है। उसके मुख पर अत्यधिक चिन्ता और उद्विग्नता है।]

अचला : (पिये हुए सिगरेट के टुकड़ों को उठाते हुए, झुँझलाते हुए स्वर में, मानों अपने आप से कह रही हो) अगर चिमनी के सदृश स्मोक ही करना है तो भी एक ट्रे तो लाया जा सकता है। यों ही मकान बहुत साफ सुथरा है न? ऐसे स्वच्छ मकान की हवा धुएँ से साफ करते हुए, जिससे मच्छर मक्खी न हों, राख से उसकी जमीन भी साफ की जा रही है। मारवाड़ी राख से बर्तनों का मुखमंजन करते हैं, यह तो सुना था, और मरुभूमि में ही नहीं, जहाँ पानी नहीं मिलता, पर वहाँ भी जहाँ नदियाँ और नहरें बहती हैं, लेकिन कमरे की जमीन और फर्श भी राख से साफ किये जाँय, यह कभी नहीं सुना।

[विद्याभूषण कुछ नहीं बोलता, कागज पर कुछ लिखता रहता है. अचला सिगरेट के टुकड़े लिये हुए नीचे उतरती है।]

विद्याभूषण : (एक लम्बी साँस लेकर, लिखते-लिखते) एक एक बात... मेरी एक बात बुरी लगती है। झल्लाहट...झुँझलाहट...क्रोध, कौन सी ऐसी चीजें हैं जो उत्पन्न न होती हों।...और...और फिर अब तो...अब तो जबान भी काबू में नहीं है। खुल गई है न...खुल। (कुछ रुक कर) किसी... किसी को मेरे आदर्शों, मेरे सिद्धान्तों पर विश्वास नहीं, किसी...किसी का मुझे...सच्चा...हाँ, सच्चा सहयोग प्राप्त नहीं। पर इससे...इससे क्या? महान आदर्शों...महान सिद्धान्तों को कार्य-रूप में परिणत करते समय बिरले ...हाँ, हाँ, बिरले का ही सहयोग प्राप्त होता है क्योंकि मनुष्यों में ही सच्चे मनुष्य

बिरले होते हैं। यह...यह सहयोग किसी आदर्श और सिद्धान्त में बिना पूर्ण विश्वास हुए प्राप्त हो ही नहीं सकता। विश्वास...यह विश्वास एक महान ज्योति है। ऐसी...ऐसी ज्योति जो शुद्ध अन्तःकरण को ही प्रकाशित...प्रकाशित...।

[अचला एक झाड़ू लेकर आती है।]

अचला : (जहाँ जहाँ राख गिरी है उन स्थानों को झाड़ते हुए) दिन भर... दिन भर झाड़ू दूँ। (लम्बी साँस लेकर) तकदीर में झाड़ू देना ही बदा हो तो।

विद्याभूषण : एकाएक उठकर अचला के पास आ उसके हाथ से झाड़ू छुड़ाते हुए) आपको तकलीफ करने की जरूरत नहीं है। मैंने राख फैलाई है, मैं झाड़ दे लूंगा।

अचला : (क्रोध से) पर मैं पूछती हूँ कि एक ट्रे क्यों नहीं लाया जाता?

विद्याभूषण : (झाड़ू को एक ओर पटकते हुए) दिन भर तो बाजार में घूमती हो, तुम क्यों नहीं ले आती?

अचला : (और क्रोध से) दिन भर बाजार में घूमती हूँ! बाजार में पैदल जूतियाँ चटकाते हुए, मुझे घूमने का बड़ा शौक चर्राया है न? यही तो बचपन से करती रही हूँ, और बहुत पैसा मेरे पास रख छोड़ा है न कि मैं ट्रे खरीद लाऊँ?

विद्याभूषण : (क्रोध और आश्चर्य से) अचला! अचला! अब तो तुमने हद कर दी। क्यों नहीं, औरत की जबान खुलने के बाद, वह म्यान में से निकली हुई तलवार हो जाती है। जापान के एक महापुरुष ने कहा है—Woman's tongue is her sword which never rusts. (अचला रोने लगती है) मैं तो जरा बोला कि बस नदियाँ बहीं। तुम चाहे सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक कुछ भी बका करो। जब प्रेम बिरला हो जाता है तब घृणा घनी और जब प्रेम सोता है तब घृणा जगती है।

[अचला रोते-रोते विद्याभूषण से लिपट जाती है। विद्याभूषण का सारा क्रोध हवा हो जाता है। वह उसकी पीठ थपथपाने लगता है। कुछ देर दोनों ही खड़े रहते हैं।]

अचला : (कुछ शान्त होते हुए) क्षमा...क्षमा करो, मुझे, डियर, क्या कहूँ....अब...अब मुझसे सहन नही होता।

[विद्याभूषण अचला को कुरसी पर बिठा, स्वयं दूसरी कुरसी पर बैठता है।]

विद्याभूषण : (लम्बी सांस लेकर) जानता हूँ, जानता हूँ, डार्लिङ्ग।

अचला : (आँसू पोंछते हुए, भर्राते हुए स्वर में) देखो, मैंने उस बच्चे के होने तक...सब कुछ हँसते-हँसते सहा। तुम्हारा यह कथन सदा मेरे लिये आदर्शवाक्य रहा कि दैहिक सुखों के जीवन का पीछे करने से अधिक बुरी और कोई बात नहीं। पिता जी तक को मैंने खाली हाथ...वैसा का वैसा ही लौट जाने दिया। जाते जाते किस तरह...किस बुरी तरह रोये थे, बिलखे थे, पर तुम्हारे कारण, तुम्हारे प्रेम के कारण मैंने उन तक की परवाह न की, परन्तु हमारे पास सारे साधनों के रहते हुए हमारा बच्चा गरीबों के अस्पताल में भरती कराया जाय ?

विद्याभूषण : (आश्चर्य से) अस्पताल में भरती ?

अचला : हाँ अभी मैं उसे अस्पताल में भरती करा कर आई हूँ, और क्या करती और वहाँ...वहाँ भी क्या हालत है, जानते हो ?

विद्याभूषण : क्या ?

अचला : वह चैरीटेबिल हास्पिटल है लेकिन वहाँ भी डाक्टर, वहाँ भी नर्सें मुझसे कुछ आशा करती हैं। वे लोग भी मेरे पिता जी का नाम जानते हैं ? ... सब कुछ रहते हुए भी हम लोग अपने बच्चे तक का ठीक...ठीक इलाज न करा सकें ? मेरे कलेजे का वह टुकड़ा (आँसू बहाते हुए) मेरा यह सर्वस्व, अगर इलाज की कमी, दवादारू की कमी के कारण कहीं चल बसा तो...तो डियर ! अजन्मे बच्चे पर भी स्त्री का कल्पना के सहारे प्रेम होता है, तब जन्मे-जन्माये बच्चे का कष्ट वह क्यों...क्यों कर देख सकती है (कुछ रुक कर) डार्लिग...तुम ... तुम क्या उसे...उसे उतना...उतना नहीं चाहते जितना मैं ? तुम्हारा भी तो वही...वही तो...(कुछ रुक कर) उसकी छोटी सी...नन्हीं सी जान यदि चली...चली गई तो क्या पाप...घोर पाप न होगा।

[विद्याभूषण लम्बी साँस लेता है। अचला उसकी ओर देखती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

विद्याभूषण : (विचारते हुए) अच्छा, देखो, आफ्रिका केबिल भेज कर बच्चे के इलाज के लिये रुपया मँगा लो।

अचला : (प्रसन्नता से विद्याभूषण की ओर देखते हुए) तुम...तुम नाराज होकर तो यह इजाजत नहीं दे रहे हो?

विद्याभूषण : (एकाएक खड़े होकर अचला को गले लगा कर) नहीं, नहीं अचला, केबिल में, मैं अपना नाम जोड़ दूंगा। क्या वह बच्चा मुझे तुमसे कम प्यारा है?

अचला : (आँसू बहाते हुए) कितने अच्छे...कितने अच्छे हैं। मेरे... मेरे...

लघुयवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान : महाबलेश्वर में अचला के बँगले का एक कमरा।

समय : तीसरा पहर।

[कमरा बहुत बड़ा न होते हुए भी कमरा है, कोटी या खोली नहीं, साथ ही अत्यन्त सुन्दरता से सजा हुआ है। दीवालों और छत पर रंग है और दीवालों पर भारत के भिन्न भिन्न स्टेशनों के दृश्यों की तसवीरें टँगी हैं, जिनमें महाबलेश्वर की सबसे अधिक हैं। दीवालों के खुले दरवाजों और खिड़कियों से दूर-दूर तक के महाबलेश्वर के पहाड़ी शिखर दिखाई देते हैं। दरवाजों और खिड़कियों पर महराबदार रेशमी परदे हैं। कमरे की जमीन पर मोटा कालीन है, और उस पर बेशकीमती फरनीचर टेबिलों पर कई गुलदस्तों में रंग-बिरंगे फूल सजे हैं। एक लोहे के सफेद रँगे हुए पलने में, जिस पर जाली की मच्छरदानी पड़ी है, बेबी सरस्वती चन्द्र को, एक कुरसी पर बैठी हुई अचला झुला रही है और लोरी गा रही है। मच्छरदानी के कारण बच्चा दिखाई नहीं देता। गाते गाते बीच में अचला मच्छरदानी के अन्दर अपना मुख डालकर बच्चे को देख लेती है, और फिर मुस्कराते हुए मुख को बाहर निकाल लेती है। अचला की वेष-भूषा बदल कर फिर आफ्रिका के सदृश हो गई है। वह बहुमूल्य रेशमी साड़ी और ब्लाउज़ पहिने हुए है और रत्न-जड़ित आभूषण भी धारण किये है।]

गान

रे मेरे मन के माली

मलयानिल ने छूली सुन तो! हरे हृदय की डाली
पल्लव के मृदु आन्दोलन से चौंक चकित अनजान
खोल हृदय का बन्धन बिकसी कलियों की मुसकान
हरी हरी इस जगती में अब कहाँ अँधेरी काली। रे मेरे०
छाया है या है यह माया मुझे न यह आभास
रोदन में यदि गौरव है तो क्यों है छल यह हास
छाँह नहीं यह पवन धूप है, झिलमिल मत कर जाली। रे मेरे०

[हाथ में चाँदी की तश्तरी पर कुछ बन्द चिट्ठियाँ लिये हुए स्वच्छ वस्त्रों में एक नौकर का प्रवेश। वह अचला के पास आता है और अचला उत्सुकता से चिट्ठियों को उठाती है। नौकर का प्रस्थान। अचला जल्दी-जल्दी लिफाफों को उलट पुलट कर, जिस लिफाफे पर डरबन की मोहर लगी है, उसे जल्दी से खोलकर, उसकी चिट्ठी पढ़ने लगती है। वह पत्र कितने जल्दी पढ़ रही है यह उसके एक सिरे और एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति पर दौड़ती हुई आँखों की पुतलियों से जान पड़ता है। जैसे-जैसे वह चिट्ठी पढ़ती जाती है उसका मुख अधिकाधिक खिलता सा जाता है। पत्र पूरा करते-करते उससे बैठा नहीं रहा जाता, और वह चिट्ठी हाथ में लिये हुए इधर-उधर घूमने लगती है।)

अचला : कितने...कितने खुश हैं पिता जी! जितने, जितने दुखी... दुखी होकर यहाँ से वे गये थे...उतने...उतने ही अब सुखी...सुखी हो गये हैं। जाते-जाते बोले थे--'बेटा बच्चे के दुःख की माता को चिन्ता होती है, युवक पति के दुःख की युवक पत्नी को, पर विधुर वृद्ध की किसी को नहीं! (कुछ रुक कर) कितना...कितना कारुणिक स्वर था उनका, यह कहते समय। (फिर कुछ रुक कर) कैसे...कैसे उद्विग्नता भरे पहिले...पहल पत्र थे, पर अब...अब? (कुछ रुक कर) सबसे अधिक...सबसे ज्यादा हर्ष उन्हें तब... तब हुआ, जब मैंने बैंक द्वारा लौटाये हुए अपने गहने वापस मँगाये। और जब.. जब...मैं कुछ...कुछ भी मँगाती हूँ...तभी...तभी कितने...कितने खुश होते हैं वे? (खड़े हो पत्र के एक अंश को पढ़ते हुए) "तेरा वह एक-एक

केबिल, जिससे तू रुपया मँगाती है, मेरे सुख और आनन्द का एक एक कदम आग बढ़ाता जाता है"। (फिर घूमते हुए) जितना...जितना मँगाती हूँ उससे हमेशा दूना और चौगुना...हाँ दूना और चौगुना आता है (कुछ रुक कर) सुनती थी लेने में सुख होता है, देने में नहीं, पर...पर यहाँ तो उल्टी...उल्टी बात हो रही है। (कुछ रुक कर) देने...देने में दुख भूषण...भूषण को होता था। जब..जब कुछ भी माँगती...तभी...तभी मुँह चढ़ जाता...कभी रूखे-सूखे...कभी झुँझलाये हुए शब्द भी...शब्द भी निकल जाते।...और...और देने...देने के वक्त ऐसा...ऐसा जान पड़ता मानो कलेजा...कलेजा निकाल कर दिया जा रहा है। (कुछ रुक कर) पहले, यह बात नहीं थी, धीरे धीरे...धीरे धीरे... यह पैदा हुई और फिर...फिर तो बढ़ती...बढ़ती ही जाती थी (फिर कुछ रुक कर) जब देने को नहीं रहता...तब...तब...इस...इस वृत्ति का उत्पन्न होना शायद स्वाभाविक है। (फिर कुछ रुक कर) तो पिता जी...पिताजी ...इतने सुख इतने उत्साह से इसी...इसीलिये दे सकते हैं कि उन्होंने लिया है, संग्रह किया है। लेने और देने की क्रूरता शायद भूषण के देने की नीचता... नीचता से कहीं अच्छी है। (कुछ रुक कर) और कितना...कितना स्नेह है पिता जी का। अब...अब मुझे माँ होने पर पिता जी के प्रेम की गहराई... उनके स्नेह का विस्तार...और संकीर्णता...हाँ...दो विरोधी चीजों, विस्तार और संकीर्णता का पता लगा, उनकी भावनाओं का अनुभव हुआ।...हर पत्र.. हर पत्र में आने की तैयारी...सरस्वती चन्द्र की देखने की बात का कोई न कोई ...कोई न कोई जिक्र रहता ही है। (खड़े हो पत्र के एक अंश को पढ़ते हुए) "मेरा मन वहाँ रखा है, तन यहाँ, अगर अपनी इस चिट्ठी में भी तू जल्दी आफ्रिका आने की बात न लिखती, तो मैं इसी बोट से रवाना होनेवाला था।" (फिर घूमते हुए) पर मैं...मैं जाऊँ कैसे? (कुछ रुक कर) क्यों...उन्हें मेरी क्या परवाह रह गई है? बम्बई से महाबलेश्वर तक नहीं आये?...यहाँ मुझे कई हफ्ते हो चुके...भूले भटके...दो चार...दो चार लाइन का कभी पत्र आ जाता है; पर मेरे इतना लिखने...इतनी अनुनय-विनय करने पर भी आने का नाम तक नहीं। (कुछ रुक कर) वहाँ पिता जी मेरे लिये (पलने के पास जो मच्छदारनी में मुँह डाल) तुझे देखने के लिये मर...मर रहे हैं। इस...इस उम्र में हजारों मील

की यात्रा . . .यात्रा को तैयार और यहाँ . . .यहाँ है छै घंटे की मुसाफिरी भी . . . मुश्किल। न मेरी परवाह न तेरी (कुछ रुक कर फिर घूमते हुए) साहित्यसेवा हो रही है। . . .लेख लिख नहीं सकते, . . .नोबुल प्राइज प्राप्ति का प्रयत्न! (कुछ रुक कर) कितना . . .कितना सुख मिले मुझे यदि . . .इस वैभव-शाली जीवन में उनका साथ हो . . .कितनी . . .कितनी याद हर बात . . .हर बात में आती है मुझे उनकी! बंबई के उस मकान . . .मकान क्या बिल . . .हां, बिल में बात-बात पर, छोटी-छोटी बात पर कलह करते हुए . . .जीवन-संग्राम . . .हां, जीवन-संग्राम के कुत्सित से कुत्सित रूप . . .पति-पत्नी के कलह . . .कलह के दुख को भोगते हुए साथ-साथ . . .साथ-साथ रहे, संयोग रहा, और जब . . .जब शान्ति का . . .सुख का वक्त आया तब . . .तब यह अलग-अलग रहना, यह वियोग (कुछ रुक कर) पर. . .पर कहीं एकाएक. . .एकाएक आकर वे मेरा यह जीवन. . . यह जीवन देख (एक शीशे के सामने खड़े होकर) मेरी यह वेषभूषा. . .यह वेषभूषा देखें. . .तो क्या. . .क्या कहें? (कुछ रुक कर फिर घूमते हुए) क्या कहेंगे? . . .क्या कह सकते हैं? (पलने के पास जाकर फिर मच्छरदानी में मुँह डाल) सरस्वती, तू उस तरह. . .उस तरह रखा जाता तो. . .तो कभी. . .कभी का (फिर घूमते हुए) अशुभ बात मुंह से न निकलना ही अच्छा है। और. . .और बच्चे के लिए. . .अगर इस तरह रहना अनिवार्य है तो मैं. . .मैं और किस तरह. . .किस प्रकार रह सकती हूँ? उसकी माँ. . .माँ ही बन कर तो रहूँगी. . .आया. . .आया बन कर तो नहीं? (कुछ रुक कर) और मैं. . .मैं तो कहती हूँ उन्हें. . .उन्हें भी इसी तरह. . .इसी प्रकार रहना चाहिये। (फिर कुछ रुक कर) उस चैरिटेबिल हास्पिटल में भी रुपया. . .रुपया जरूरी था और सरस्वती. . .सरस्वती सेवा में भी लक्ष्मी. . .लक्ष्मी की जरूरत है (चुपचाप कुछ देर तक घूमकर कुर्सी पर बैठते हुए) तुम. . .तुम आओगे नहीं. . .मुझसे तुम्हें. . .सुख मिल नहीं रहा है। और पिता जी. . . पिता जी को सुख से. . .सुख से वंचित किए हुए हूँ। . . .(कुछ रुक कर) प्यारे. . .कहां. . .कहां गया वह तुम्हारा प्रेम. . . जिसके. . .जिसके कारण रात को. . .रात को मकान में अकेले. . .अकेले रहने. . .में डर लगता था? जिसके. . .जिसके सबब मेरे बिना एक एक घण्टा. . .एक एक क्षण. . .एक एक सेकेण्ड. . .मुश्किल से. . .कठिनाई से बीतता था? (लम्बी सांस लेकर)

इतने . . .इतने कठोर कैसे . . .कैसे हो गए, डियर ? . . . (कुछ रुक कर) डार्लिंग ! डार्लिंग !

नेपथ्य में : आया अचला, आया अचला।

(चौंक कर एकाएक दरवाजे की तरफ बढ़ते हुए) हैं, आ गये, आ गये, आ गये क्या वे ?

[अचला के दरवाजे पर पहुँचते-पहुँचते विद्याभूषण का प्रवेश। वह अपनी साधारण वेशभूषा में है। उसके मुख पर अत्यन्त उत्साह है, लेकिन अचला को देखते ही उसका सारा उत्साह हवा हो जाता है। वह ठिठका सा रह जाता है। अचला उससे लिपटने को आगे बढ़ते-बढ़ते उसकी यह एकाएक परिवर्तित मुद्रा को देख कर सहम सी जाती है और चुपचाप खड़ी की खड़ी रह जाती है। कुछ देर दोनों इसी तरह खड़े रहते हैं। धीरे-धीरे विद्याभूषण कमरे को चारों तरफ से देखते हुए, कमरे में प्रवेश करता है। अचला उसके पीछे-पीछे जाती है। विद्याभूषण एक कुरसी पर बैठ एक दीर्घ निःश्वास छोड़ता है। अचला इसकी कुरसी पर बैठ कनखियों से विद्याभूषण को देखती है, कुछ देर तक एक विचित्र प्रकार की निस्तब्धता रहती है।]

विद्याभूषण : (सिगरेट केस निकाल सिगरेट जलाते हुए) अचला (माचिस बुझ जाती है, अतः दूसरी माचिस जला) अचला (माचिस बुझ जाती है, अतः तीसरी माचिस जला) अचला !

अचला : डियर ?

विद्याभूषण : (सिगरेट का कश जोर से खींचते हुए) तुम्हारे . . . (धुँआ छोड़) तुम्हारे जीवन में तो परिवर्तन . . .भारी परिवर्तन हो गया है ?

अचला : (डरते-डरते) तुम्हारी . . .तुम्हारी आज्ञा से ही सब कुछ हुआ है।

[विद्याभूषण सिर नीचा कर कुछ देर तक साचता और सिगरेट पीता रहता है। अचला एकटक उस की ओर देखती है। फिर कुछ देर निस्तब्धता।]

विद्याभूषण : (धीरे-धीरे सिर उठाकर) मेरी . . .मेरी आज्ञा से सब कुछ हुआ है, . . .डार्लिंग ?

(अचला कुछ न कह उसी तरह विद्याभूषण की तरफ देखती है।)

विद्याभषण : (कुछ देर चुप रह जोर का एक कश खींच) मैंने तो बच्चे के

इलाज के लिए, आफ्रिका से रुपया मँगाने को कहा था। महाबलेश्वर मध्यम स्थिति के लोग भी आते हैं। (फिर जोर से कश खींच) इस सब में आफ्रिका का जो खर्च होता उसे मैं कर्ज मानता, कमा-कमा कर पाई-पाई चुका देता। रिश्तेदारी, मित्रता, प्रेम किसी प्रकार के भी सम्बन्ध में मैं किसी का एहसान लादने को तैयार नहीं, जिसके लौटाने या जिसके खज़ाना चुकाने में समर्थ न होऊँ। फिर मेरी साहित्यसेवा सफलतापूर्वक चलने लगी थी। (धुवाँ छोड़ते हुए) मुझे देश और विदेशों से, लेखों का पुरस्कार मिलने लगा था। एक नाटक और नावेल भी मैंने शुरू कर दिया था। (कुछ देर चुप रह एकाएक खड़े हो जल्दी-जल्दी घूमते हुए) इस महल. . .महल को किराये पर लेने के लिए मैंने आज्ञा न दी थी। (फरनीचर की ओर संकेत कर) इस बेशकीमती फरनीचर को खरीदने के लिए, क्योंकि किराये पर तो ऐसा मिल नहीं सकता, मैंने नहीं कहा था! (गुलदस्तों की तरफ इशारा कर), इन गुलदस्तों में रंगबिरंगे फूल सजाने की, रोज-रोज पैसा बहाने की मैंने इजाजत नहीं दी थी। (बेचैनी से इधर-उधर टहलता है)

अचला : (बैठे-बैठे ही कुछ देर बाद रुखाई से) पर. . .पर अगर बच्चा इस तरह से न रखा जायगा तो फिर बीमार पड़ेगा।

विद्याभूषण : (कुछ देर चुपचाप रहने के बाद एकाएक अचला के निकट जाकर उसके पास खड़े हो कर) और तुम्हारी इस बहुमूल्य साड़ी तथा ब्लाउज़ पहिने बिना इन. . .जड़ाऊ जेवरों से अपने को लादे बिना भी बच्चा बीमार पड़ जायगा? तुम तो कहती थी कि मैंने जेवर बैंक की मार्फत आफ्रिका लौटा दिया।

अचला : (क्रोध से) जी हाँ, मैं झूठ नहीं बोलती थीं। बैंक की मार्फत जेवर लौटा दिया गया था, और बैंक के मार्फत ही वापस आया है। आप यह उम्मीद नहीं कर सकते कि आप का बच्चा तो शाहजादे के तरीके से रखा जाय, और मैं उसकी दाई आया, या नौकरानी बन कर रहूँ।

[विद्याभूषण चुपचाप कुरसी पर बैठ जाता और सिर नीचा कर सिगरेट पीता रहता है। अचला एक टक उसकी ओर देखती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

विद्याभूषण : (धीरे-धीरे सिर उठा कर) अचला! तुमने भी तो जहाज में

कहा था कि तुम्हारा दृढ़ विश्वास हो गया है कि तुम्हारे पिता ने वह संपत्ति बुरे मार्गों से कमाई है। तुमने खुद छुटपन में उनकी क्रूरताओं को देखा था।

अचला : (बेपरवाही से) वह मैंने क्षणिक आवेश में कहा था।

विद्याभूषण : और बंबई में भी तो तुम यही बात कई बार कहा करती थी। कहती थी कि वह अमीरी जीवन से यह गरीबी जीवन कहीं अच्छा। उस उत्तराधिकार से यह श्रम कहीं अच्छा। तुम तो सिर्फ बच्चे के इलाज के लिये रूपये मँगाना चाहती थी।

अचला : (उसी बेपरवाही से) वह सब मैं तुम्हें खुश करने के लिए कह देती थी।

विद्याभूषण : (आश्चर्य से) ऐसा !

अचला : (उसी बेपरवाही से) बिलकुल, बंबई का वह मकान मुझे बिल-बिल सा मालूम होता था। उस मकान का वह... वह...बाथरूम मुझे गन्दे गटर सा मालूम पड़ता था। वह जीना... जीना मुझे नसेनी दिखता था; वह रसोई...वह रसोई—घर मुझे बम...बमपुलिस सा घृणित। वह सारा...सारा जीवन नारकीय....सुना (जोर से) नारकीय था नारकीय।...क्या मैंने कई बार उस जीवन की वहाँ भी निन्दा न की थी ?

विद्याभूषण : सिर्फ झगड़े के वक्त, शान्ति होने पर तुम उन बातों को वापिस ले लेती थीं। कहती थीं क्षणिक आवेश के कारण वह सब कहा था।

अचला : शान्ति प्रेम के क्षणिक आवेश के कारण हो जाती थी, पर थोड़ी देर बाद मुझे मालूम होता था कि प्रेम ने बलात्कार कर शान्ति की स्थापना की है।

विद्याभूषण : ऐसा ? तो... तो तुम मुझे धोखा...धोखा भी दे रही थीं ?

(अचला कोई उत्तर न देकर खड़े होकर इधर-उधर टहलने लगती है।)

विद्याभूषण : (कुछ देर बाद गंभीरता से) तो अचला अब मेरा तुम्हारा साथ रहना असम्भव बात है ?

अचला : (खड़े होकर) अभी हम लोग कहाँ साथ रहते हैं ? मैं तो खुद आफ्रिका जाने की बात सोच रही हूँ। मेरे पिता, विधुर पिता, अपनी एकमात्र सन्तान के लिए छटपटा रहे हैं।

विद्याभूषण : (क्रोध से) ऐसा ! तो तुम जितनी जल्दी रवाना हो सको उतना ही अच्छा है।

अचला : (और भी क्रोध से नजदीक आ) अगली बोट . . . हाँ, अगली बोट ही से लो . . . मैं यहाँ अब . . .

विद्याभूषण : (अत्यन्त क्रोध से खड़े हो बीच ही में) पर सरस्वती चन्द्र सुना, मेरा बच्चा यहीं रहेगा। उसका पालन-पोषण मेरे आदर्शों, मेरे सिद्धान्तों के अनुसार होगा।

अचला : (और अधिक क्रोध से) कभी नहीं, हरगिज नहीं। वह मेरे साथ जायगा, मेरे साथ, देखूंगी उसे जाने से कौन रोक सकता है?

[पलने से बच्चे के रोने की आवाज आती है अचला जल्दी से पलने के पास जा मच्छरदानी में मुँह डाल, पलना हिलाती है। विद्याभूषण भी पलने के नजदीक जा कर मच्छरदानी में मुख डाल बच्चे को देखता है।]

अचला : (घृणा के एक विचित्र स्वर में) अब. . . अब फुरसत मिली है बच्चे को देखने की। ये बच्चे का पालन-पोषण करेंगे? . . . बच्चों का पालन आदर्शों और सिद्धान्तों, सुना . . . आदर्शों और सिद्धान्तों से नहीं स्नेह. . . सच्चे मातृ-स्नेह से होता है, पिता के स्नेह से भी . . . पर वह. . . वह तुममें कहाँ? वह है मेरे पिता में! एक तुम . . . तुम पिता हो और एक मेरे. . .मेरे पिता. . .पिता. . .पिता . . . हैं . . . आह। . . .

[अचला का स्वर उसके स्वर सा है जो टूट तो जाता है पर झुकता नहीं। विद्याभूषण कुछ नहीं बोलता, परन्तु क्रोध की लाली और पश्चात्ताप के पीलेपन से उसका मुख तमतमा सा उठता है।]

यवनिका

चौथा अङ्क

पहला दृश्य

स्थान : डरबन में लक्ष्मीदास के मकान में अचला का कमरा।

समय : दोपहर।

[वही कमरा जो पहिले अंक में था, उसी तरह सजा हुआ है, फर्क इतना ही है कि अब उसमें बच्चों के खेलने के अनेक खिलौने दीख पड़ते हैं। इन खिलौने में एक छोटी सी सुन्दर गाड़ी, जिसमें या तो चार पाँच वर्ष का बच्चा बैठ सकता है या उसे ठेल कर चला सकता है, एक इतनी ही उम्र के बच्चे के बैठने और घूमने के लायक घोड़ा, एक इतनी ही बड़ी मोटर; ये तीन बड़ी चीजें हैं और छोटी-छोटी तो अगणित। इन छोटी चीजों में अनेक तरह की गुड़ियाँ, बाजे और चाबी लगाकर चलने वाले टीन के खिलौने जैसे रेल, मोटर, जहाज, बाइसिकल और तरह-तरह के पुतले, पुतलियाँ आदि मुख्य हैं। सरस्वती चन्द्र जो अब करीब साढ़े चार साल का हो गया है, एक बेबीसूट पहिने खिलौनों से घिरा हुआ कालीन पर बैठा खेल रहा है। कभी किसी गुड़िया ले उसे लेटा और उठा, कभी कोई बाजा उठा उसे मुँह से या हाथों से बजा, कभी चाबी वाले खिलौने में से किसी को उठा उसे चला कर खेलता है। वह गोरे रंग का सुन्दर बालक है। अचला एक कुर्सी पर बैठी हुई गा रही है। बीच-बीच में स्वयं या सरस्वती चन्द्र के पुकारने पर उठ कर सरस्वती चन्द्र के खेल में उसे सहायता देती जाती है, जैसे कोई चाबी का खिलौना चलते-चलते ठहर गया, उलट गया या दूर चला गया तो अचला उसे ठीक कर देती है, कभी रेल पातों पर से हट गयी तो फिर उसे पातों पर रख चला देती है, कभी कोई बाजा बजते-बजते रुक गया, तो उसे फिर से बजा देती है। बीच-बीच में गाना बन्द कर गद्य में भी कुछ कहने लगती है उसकी उम्र २५ वर्ष के लगभग होने पर भी वह ३५ वर्ष से कम नहीं दिखती, इतना ही नहीं उसकी आँखों के कोहों के पास कुछ झुर्रियाँ पड़ गयी

हैं। उसकी वेषभूषा वैभवशाली होने पर भी उसके मुख पर शोक का और वह भी एक तरह के गंभीर तथा अटल शोक का, साम्राज्य दिख पड़ता है। इस शोक की छाया उसके स्वर एवं जब वह मुस्कराती है तब उसकी मुस्कराहट पर भी दिखाई देती है।]

गान

रे मेरे वैभव विशाल

मुझे डराते समझ अकेली, ये तेरे आते उबाल।

अचला : (गाते हुए एक दूर चली गयी बाइसिकल को लाकर सरस्वती चन्द्र के नजदीक रखते हुए) क्यों बेटा दूर गई हुई चीज, प्यारी चीज, जब नजदीक आती है तब तुझे अच्छा...बड़ा अच्छा लगता है न?

सरस्वती चन्द्र : (माँ की तरफ देख कर) त्या...त्या तहा माँ?

अचला : (कुर्सी पर बैठते हुए) कुछ नहीं, कुछ नहीं बेटा।

[सरस्वती चन्द्र फिर खेलने लगता है और अचला गाने।]

भर आते नयनों में मोती, गिर जाते बन लाल लाल

चुभ जातीं हीरे की किरणें, पत्थर से लगते प्रवाल

[कुछ देर में एंजिन और डब्बे पटरी से उतर जाते हैं।]

सरस्वती चन्द्र : (अचला की ओर देख) माँ! माँ!

अचला : (गाते गाते पटरी से उतरे हुए रेल के डब्बों और एंजिन को फिर पटरी पर रखते हुए) ठीक...ठीक हो गया न? इसी तरह...इसी तरह... पटरी से हटा हुआ जीवन...जीवन यदि फिर...फिर से पटरी...पटरी पर लाया जा सके...तो....तो...

सरस्वती चन्द्र : त्या ...त्या हुआ, माँ?

अचला : कुछ नहीं, कुछ नहीं बेटा!

सरस्वती चन्द्र : तुछ तैसे नहीं,—पतली...जीवन...

अचला : (कुर्सी पर बैठते हुए) नहीं, सचमुच नहीं, कुछ नहीं बेटा।

[अचला फिर गीत गाने लगती है सरस्वती चन्द्र खेलने।]

पोंछ पलक से भी यदि पातीं, प्रिय चरणों की रज सँभाल

कुटिया के पर्णों की छाया, छूकर हो जाती निहाल

[सरस्वती चन्द्र का बीन बाजा बजते बजते रुक जाता है।]

सरस्वती चन्द्र : (हाथ का बाजा अचला को दिखा कर) माँ! माँ!

[अचला उठ कर बाजे को ठीक कर स्वयं बजाती है।]

सरस्वती चन्द्र : (उठकर बाजे को लेते हुए) मैं... मैं बजाऊँगा, माँ...मैं...

अचला : (बाजा देते हुए) हाँ... बाजा... बाजा बेटा, तू... तू ही तो बजा रहा है...नहीं...नहीं तो कब का ही स्वर रुक जाता। पर...पर, बेटा मेरी...मेरी भी इच्छा अभी बजाने की जैसी की तैसी है।

[अचला मुँह का बजने वाला एक बाजा लेकर खुद बजाती है। सरस्वती चन्द्र जोर से हँसता है। उसकी हँसी में अपनी हँसी मिलाते हुए, जिसमें एक प्रकार की विडम्बना भरी हुई है, अचला बाजा बन्द कर फिर गाने लगती है।]

यदि तू तब भिक्षुक बन आवे, दूँ तुझको भर थाल-थाल
विकसित उर का नव प्रकाश, मानस मोती की विमल माल

[गाते-गाते अचला एकाएक खड़े होकर, सरस्वती चन्द्र को गोद में उठा कर उसके गालों में कई चूमें लेती है। सरस्वती चन्द्र खेल में मग्न होने के कारण अचला से छूटने का प्रयत्न करता है। जब वह नहीं छोड़ती तब वह ठिनठिनाता है। अचला उसे छोड़ देती है। वह फिर खेलने लगता है।]

अचला : मुझे जितनी तेरी परवाह है, तुझे मेरी नहीं। क्यों?...अरे तुझे क्या, (लम्बी साँस लेकर) किसी...किसी को भी नहीं!...पिता...पिताजी तक को अब तू ही तू...हाँ तू ही तू सूझता है, मैं नहीं!... अब मेरे दुख...मेरे शोक की तरफ भी उनकी नजर नहीं जाती...अब...

सरस्वती चन्द्र : (आश्चर्य से अचला की ओर देख कर) तू त्या त्या कहती रहती है। मेली तो तुछ समझ में ही नहीं आता।

अचला : समझ में...समझ में ज्यादा बातें न आना ही अच्छा है, बेटा... तभी... तभी तो तेरी उम्र सच्चे सुख, सच्चे आनन्द की अवस्था है।

सरस्वती चन्द्र : त्या...त्या...सुध...त्या आनंद।

अचला : हाँ, और उस सुख को, उस आनन्द को भी बिना समझे...सुना... बिना समझे भोगना ही तो सच्चा सुख और सच्चा आनन्द है।

[लक्ष्मीदास का जल्दी-जल्दी प्रवेश। वह अचला की ओर देखता भी नहीं और सीधा सरस्वती चन्द्र की तरफ़ बढ़ता है।]

लक्ष्मीदास : (आगे बढ़ते हुए) बेटा...बेटा...रीछ का तमाशा करने वाला आया है...रीछ का।

सरस्वती चन्द्र : (उठ कर लक्ष्मीदास की ओर दौड़ कर) लीछ का तमाशा .. लीछ का तमाशा।

[लक्ष्मीदास सरस्वती चन्द्र को गोद में उठा, बिना एक शब्द भी अचला से कहे बाहर जाता है। अचला चुपचाप खड़ी हो कुछ देर तक जिस दरवाजे से वे लोग गए हैं उसकी तरफ़ देखती हैं।]

अचला : (लंबी साँस लेकर)

प्राणनाथ करुणा यतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम बिन रघुपति कुमुद विधु, सुरपुर नरक समान।।

[अचला एकाएक कुर्सी पर बैठ कर फूट-फूट कर रोने लगती है। विभावती का प्रवेश। विभावती की अवस्था अचला से बहुत अधिक होने पर भी उससे बहुत कम दीख पड़ती है।]

विभावती : वही रफ्तार बेढंगी जो पहिले थी सो अब भी है। क्या...क्या अचला...इसी तरह...इसी प्रकार सारा जीवन बिताना है। (अचला के पास की कुर्सी पर बैठती है।)

अचला : (कुछ शान्त हो आँसू पोछते हुए) नहीं, बहन, सुखी...सुखी होने का रास्ता ढूंढ़ लिया है। मैं हिन्दुस्थान जा रही हूँ।

विभावती : (आश्चर्य से) हिन्दुस्थान जा रही हो, इसका मतलब ?

अचला : हिन्दुस्थान जाने का मतलब तो...हिन्दुस्थान जाना ही होता है। डिक्शनरी में हर एक शब्द का अलग-अलग मतलब निकाल कर पूरे वाक्य का मतलब निकालोगी तो भी इसके सिवा कोई अर्थ नहीं निकलेगा।

विभावती : क्यों, उनकी स्वस्थता के समाचार तो कल ही की बंबई आफिस की चिट्ठी में आये हैं।

अचला : बंबई में जब पिताजी ने उनके समाचार भेजते रहने के लिये ही

आफिस खोला है, तब उनकी स्वस्थता के समाचार भेजते रहना तो उस आफिस का काम ही है !

विभावती : तब ?

अचला : तब . . .तब यह विभा बहिन, कि उनके बिना मुझे कभी . . . कभी भी सुख नहीं मिल सकता। यह संपत्ति . . .सांपत्तिक जीवन के ये सारे सुख नीरस . . .नीरस हैं। (कुछ रुक कर) अब मुझे अपने आप पर आश्चर्य . . . ताज्जुब होता है कि मैं कैसी नीच हूँ। उन्हें छोड़ कर यहाँ आ कैसे गयी ?

विभावती : बच्चे की स्वस्थता, उसके आराम के लिये तुम्हारा आना अनिवार्य था।

अचला : (विचारते हुए) शायद, पर . . .पर मुझे भी वहाँ ये दैहिक . . ये दैहिक . . .ये आधिभौतिक सुख याद आते थे ? इसलिये तो कहती हूँ कि मैं नीच . . .कैसी नीच हूँ।

विभावती : और अब जाने पर फिर ये सुख याद न आवेंगे ?

अचला : कभी नहीं, क्योंकि इन तीन वर्षों के अनुभव से जान गयी न कि इनसे सच्चा सुख, सच्चा आनंद मिल ही नहीं सकता। (कुछ रुक कर) देखो, विभा बहन, हिन्दुस्थान में अनेक दैहिक कष्ट पाकर जब मैं आफ्रिका लौटी, तब फिर से दैहिक सुखों के नशे ने मुझे सब कुछ हराभरा दिखाना शुरू किया। किन्तु धीरे-धीरे यह नशा उतरने लगा, हरियाली सूखने लगी। भरावट के स्थान पर रिक्तता आने लगी, और शनैः शनैः उस रिक्तता को उनके स्मरण ने भर दिया। अब . . .अब मैं देखती हूँ कि बिना उनके मुझे सुख, सुख क्या क्षणमात्र का विश्राम मिलना कठिन नहीं असंभव है। आकाश में अनेक नक्षत्रों के रहते हुए भी जिस प्रकार बादल का टुकड़ा बिना उनके साथ किसी प्रकार के संपर्क के अकेला भटकता रहता है उसी प्रकार इस आफ्रिका में मेरी स्थिति है। पृथ्वी पर अनेक प्रकार की सृष्टि रहते हुए भी जिस तरह सुर्खा बिना उसके संग किसी तरह के सम्बन्ध के इधर-उधर उड़ती फिरती है, वही मेरी यहाँ हालत है।

विभावती : और उन्हें इतने पर तुम्हारी परवाह नहीं, हिन्दुस्थान से एक पत्र तक न भेजा।

अचला : इससे क्या ? प्रधान चीज है प्रेम करना बिना यह देखे कि प्रेम किया

जाता है या नहीं। मुझे अपनी भावनाओं को, अपनी इच्छाओं को और स्वयं अपने को, देना सीखना चाहिए, अर्पित करना, बिना खेद के, बिना दुख के। (कुछ देर निस्तब्धता)

विभावती : और यह भी सोचा है कि क्या होगा?

अचला : बच्चे का? क्यों क्या गरीबों के बच्चे नहीं होते? उनका लालन-पालन नहीं होता? (कुछ रुक कर) इतना...इतना ही नहीं, बहन यह बच्चा भी बड़ा होकर कहीं अपने पिता के आदर्शों और सिद्धान्तों का अनुयायी निकला तो...यह भी उल्टा मुझे कोसेगा।...(कुछ रुक कर) जानती हो जब कभी मुझे यह ख्याल आता है तब किस की याद आती है?

[विभावती कुछ न कह कर अचला की तरफ़ देखती है।]

अचला : (विभावती की ओर देखती हुई) भरत और कैकेयी की।

[अचला खड़े होकर इधर-उधर घूमने लगती है। विभावती कुछ न कह कर अचला की ओर देखती रहती है।]

अचला : (एकाएक खड़े होकर विभावती की तरफ देख कर) विभा बहन, अब तक मुझे प्रत्यक्ष नहीं तो अप्रत्यक्ष सी, जाग्रत नहीं तो सोती सी, धुँधली-धुँधली आशा थी कि वे आ जावेंगे, मेरे बिना अकेले न रह सकेंगे। आशा के उसी सूत के सहारे मैं दिन निकाल रही थी, परन्तु वह सूत कच्चा सूत निकला उनके आदर्श पक्के आदर्श हैं। उनके सिद्धान्त सच्चे सिद्धान्त हैं। (कुछ रुक कर) और ठीक...ठीक भी है। बहन, बुरे मार्गों से उपार्जित की हुई इस संपत्ति से सुख प्राप्त करके वे क्यों पाप के भागी हों? जिस सोने चाँदी पर गरीबों के आसुओं का जंग और जवाहरात पर उनके खून के दाग हों वे उसे क्यों छुवें? (फिर कुछ रुक कर) इस बार...इस बार इस अमीरी का सदा के लिये त्याग कर गरीबी का आलिंगन करूँगी। इस...इस दफा, इस उत्तराधिकार को हमेशा के लिये छोड़, श्रम को गले लगाऊँगी। (कुछ रुक कर) विभा बहन, हर नयी पीढ़ी के लिये किसी न किसी नये चमकते हुए आदर्श की जरूरत है और उसे देखे बिना उस ओर बढ़े बिना सुख नहीं मिलता।

विभावती : और तुम समझती हो; तुम से यह सब चलेगा, चलने वाला है? उनसे फिर नित नये झगड़े न होंगे?

अचला : अवश्य...अवश्यमेव चलेगा और उनसे इस लिए झगड़े न होंगे कि जब तक इस नवीन जीवन में अभ्यस्त न हो जाऊँगी, तब तक उनसे मिलूँगी ही नहीं, आ रही हूँ उन्हें इसकी खबर तक न दूँगी, किसी गाँव में रहूँगी जहाँ कम से कम खर्च से निर्वाह हो जाय, और ...बंबई प्रान्त के गाँव में भी नहीं, किसी दूसरे प्रान्त के गाँव में, जिस में जब तक उनके योग्य न हो जाऊँ तब तक उन्हें मेरा पता भी न लगे। (बैठ जाती है।)

विभावती : (गंभीरता से) भूल...फिर भारी भूल करोगी बहन। तुम से वह जीवन कभी...कभी भी चलने वाला नहीं है।

अचला : इसीलिए न कि मैं वैभव में पड़ी हूँ, उसी में रही हूँ।

विभावती : जरूर!

अचला : जानकी जनक महाराज के महलों में पली थीं और दशरथ महाराज के महलों में रही थीं, फिर बन-बन कैसे...कैसे घूमी?

विभावती : यह आदर्श की बात है, बहन?

अचला : संसार में वही जीवन सफल होता है जो सच्चे आदर्शों पर चलता है।

विभावती : फिर बहन, उन्हें राम का प्रेम प्राप्त था, बन में वे उनके संग थीं। तुम तो अपने आने की सूचना भी दिये बिना जा रही हो, उनके साथ भी नहीं रहने वाली हो?

अचला : उनके साथ रहने के योग्य तो हो जाऊँ; इसीलिये तपस्या की जरूरत है। रघुनाथ जी ने सीता का त्याग किया तब भी सीता ने बन में उस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में राम की ही प्राप्ति के लिये तो तप किया था। मैं...मैं भी उनकी प्राप्ति के लिये योग्य बनने को तप करूँगी। इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में प्राप्त होंगे। (कुछ रुक कर) और वैदेही...वैदेही ही क्यों...पार्वती...गिरिजा ने क्या किया? उनके तो पूर्व जन्म में शिव पति थे और उन्हीं को फिर प्राप्त करने की इच्छा से तपस्या की। पार्वती ने निश्चय किया था कि या तो शंकर को वर बनाऊँगी या जन्म-जन्म तप करूँगी और कैसे शिव वैरागी, दिगम्बर। उस जन्म में महादेव और उनका विवाह न हुआ था। मेरी..मेरी नीचता तो देखो, मेरे पति भारत में कष्ट...अगणित कष्ट पा रहे

हैं, और मैं...मैं ये सुख भोग रही हूँ। धिक्कार...मुझे एक नहीं अगणित बार धिक्कार है।

[अचला सिर झुका लेती है, विभावती अचला की ओर देखती है, कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

विभावती : और...और यह भी सोचा है बहन, कि पिता जी का क्या होगा ?

अचला : वे ? वे वर्दाश्त कर लेंगे बहन। जब तीन वर्ष पहिले भारत में रही तब भी तो उन्होंने सहन किया, (कुछ रुक कर) और अब ?...अब उन्हें मेरी शायद उतनी परवाह भी नहीं हैं।

[विभावती आश्चर्य से अचला की ओर देखती है।]

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान : बंबई, एक गन्दे होटल की एक गन्दी कोठरी।

समय : रात्रि ।

[छोटी सी कोठरी है और उसकी बहुत नीची छत। दीवारों और छत के रंग से जान पड़ता है कि उसमें रंग पुते वर्ष नहीं युग बीत गये हैं। दाहिनी तरफ की दीवाल में सिर्फ एक दरवाजा है, जिसके किवाड़ बन्द हैं। पीछे की दीवाल में एक खिड़की है जिसके काँच कुछ फूट गये हैं। खिड़की से बाहर की सड़क का जो हिस्सा बिजली की बत्तियों के प्रकाश में दिखाई देता है उससे जान पड़ता है कि होटल बंबई के किसी मुहल्ले में है, बाँयी ओर की दीवाल में खूँटियाँ लगी हैं, जिन पर कुछ मैले से कपड़े अव्यवस्थित रूप से टँगे हैं। छत से बिजली की एक बत्ती झूम रही है, बत्ती की शेड धूल में मैली हो गयी है। फर्श चूने का है जो कई जगह खुद गया है। फर्श पर इधर-उधर सिगरेट के कई पिये हुए टुकड़े और राख पड़ी हुई है। फरनीचर में सिर्फ एक पलंग—एक टेबिल और दो कुर्सियाँ हैं। पलंग लोहे का है और उसका काला रंग कई जगह से उचड़ गया है। बिस्तर की चादर और तकिये की खोल मैली है और कई जगह से फट गयी है। टेबिल और कुर्सियों की लकड़ी बिना वार्निश के खुरदरी सी हो गयी है, और एक कुर्सी का बुना हुआ बेत

भी बीच में से टूट गया है, फिर भी कुर्सी पर गिरने की जोखिम उठाये बिना बैठा जा सकता है। एक कुर्सी पर कमीज, पतलून और टूटे से जूते पहिने हुए विद्याभूषण बैठा हुआ है। विद्याभूषण की उम्र तीस वर्ष की होने पर भी वह चालीस वर्ष से अधिक का जान पड़ता ह। फैले हुए बालों में कई सफेद हो गए हैं। आँखों पर चश्मा तथा कपड़े मैले, एवं बिना लोहा किए पतलून के क्रीज़ का तो पता ही नहीं। उसकी सामने की टेबिल पर कुछ कागज रखे हुए हैं। उन्हीं के नजदीक एक शराब की बोतल और गिलास रखा हुआ है। गिलास एक तिहाई खाली है। बाँये हाथ में अधजला सिगरेट और दाहिने हाथ में फाउण्टेन पेन है। वह टेबिल पर रखे हुए कागजों को देख रहा है। बीच-बीच में कभी-कभी सिगरेट पीता है और कभी दाहिने हाथ की कलम को रख, उससे शराब का गिलास उठा कर शराब। उसके मुख से जो भाव व्यक्त होते हैं उससे जान पड़ता है कि भीतर ही भीतर इतना झुक गया है।]

विद्याभूषण : इतना ..इतना अच्छा लेख होने पर भी वापस एक...एक ही पेपर ने लौटाया हो यह नहीं...मैन्चिस्टर गार्डियन...न्यूयार्क टाइम्स...कलकत्ते के स्टेट्समैन और यहाँ के टाइम्स ने भी। (कुछ रुक कर) क्या...क्या बात है? पहले...पहल तो मुझे...मुझे जिन आर्टिकिल्स में दोष दिखाई देते थे...वे. ..वे भी छप जाते थे...और अब...अब जो मुझे निर्दोष दिखते हैं...वे...वे तक वापस आ जाया करते हैं, वह...वह भी एक के बाद दूसरे पत्रों से। (जोर से एक कश खींच कर कुछ रुक कर) मेरी ही गुण दोष...देखने की दृष्टि धुंधली हो गयी है...मेरी...मेरी ही परख....परख करने की शक्ति कुण्ठित हो गयी है...या...या इन सारे...इन सारे पत्रों ने मिल कर मेरे खिलाफ साजिश की है? (कुछ ठहर कर शराब पी) जब लिखना शुरू किया तब...तब धीरे-धीरे...बहुत धीरे-धीरे कलम चलती थी...मानों कहीं रपट न पड़े...किसी गढ़े में न चली जाय...इसकी उसे चिन्ता रहती थी...उस...उस वक्त पढ़ना अधिक और लिखना कम होता था। (एक कश खींच कर)...अचला के प्रेम...प्रेम के समय वह प्राप्त होगी या नहीं...इस....इस उलझन में पढ़ना और लिखना दोनों...दोनों ही (धुवाँ छोड़ते हुए) हवा हो गए हैं। (कुछ रुक कर)...अचला...अचला की प्राप्ति के बाद बिना पढ़े...ही, बिना पढ़े ही एक अजीब तरह की स्फूर्ति पैदा हुई। थोड़े ही दिनों में जो लिखा उससे और देश-विदेशों में...धूम...धूम मच गयी, प्रत्यक्ष

में धन . . . आने लगा. . . और अप्रत्यक्ष में नोबल प्राइज़. . . हाँ नोवल प्राइज़ के स्वप्न दिखने लगे। (कुछ रुक कर, शराब पी) जब उससे झगड़ . . . झगड़े शुरू हुए तब ? . . . तब कलम के सामने पहाड़ खड़े हो गए, उनकी खुदाई के लिए धन. . .हाँ धन रूपी डाइनेमाइट की जरूरत थी। (कलम को देखते हुए) तेरी इस पतली सी नोक से वे कैसे. . . कैसे खुदते ? सुरंग खुदी. . . डाइनेमाइट लगा. . .(जोर से कश खींच धुँआ छोड़ते हुए) विस्फोट हुआ. . . वह आफ्रिका चली गयी। मैदान. . . मैदान ही मरा। (फिर कलम की ओर देखते हुए) तू चलने, सरपट दौड़ने लगी पर. . .जो लिखती है वह छपता क्यों नहीं ? वापस क्यों आ जाता है। और ताज्जुब की बात तो यह है, मुझे. . . मुझे वह निर्दोष . . . सर्वथा निर्दोष दिखाई देता है। (सिगरेट को देखते हुए एक कश खींच) फिर उसे तेरी. . . तेरी शरण से तो कोई. . . कोई खास मदद न. . . न मिली थी। (गिलास उठा कर उसे देखते हुए) तूने . . . तूने मैदान. . . मैदान में बह कर काई . . . हाँ काई जरूर पैदा की. . . हरी-हरी. . . और चिकनी चिकनी। इसी. . . हाँ इसीलिए तो (गिलास रख, कलम को देखते हुए) यह. . . यह उस पर सरपट दौड़ रही है, बिना . . . बिना सोचे विचारे, बिना कहीं रुके थमे और. . . और कौन. . . कौन सी कहावत चरितार्थ हो रही है।. . . "Good wine makes a bad head and a long story" पर. . . पर इससे क्या, तेरी. . . तेरी शरण लेने के बाद कहीं . . .कहीं तू किसी को छोड़ सकती है ?

(शराब पी कुछ देर चुपचाप बैठने के बाद एकाएक खड़े हो कर इधर-उधर घूमते हुए) मेरा रास्ता. . .रास्ता हो गया है।. . . मेरे आदर्श. . .मेरे सिद्धान्त . . .सब. . .सब गलत। (कुछ ठहर कर खिड़की से सामने की ओर देखते हुए जल्दी जल्दी) वे सारे इन मकानों की गन्दी नालियों में सड़-सड़ कर बह रहे हैं। इकट्ठे . . . इकट्ठे हो रहे हैं, इन नालियों के मुहाने पर, (सिगरेट खत्म होने के कारण दूसरा सिगरेट उसी सिगरेट से जलाते हुए धीरे-धीरे) और जलाये. . . जलायें वे जायेंगे मेरे लड़के . . . सरस्वती . . . सरस्वती चन्द्र द्वारा । वह . . . वह जिस तरह. . . जिस प्रकार पाला पोसा. . .बड़ा किया जा रहा है, उसमें इस बात में शक नहीं है कि मेरी लाश. . .लाश ही वह कचरे के सदृश न जलायेगा पर. . .पर मेरे आदर्श और सिद्धान्त भी। (जोर का कश खींच) फिर क्यों. . . क्यों ये यातनायें भोग रहा हूँ ? (कुछ देर चुप रहने के बाद) एक चना. . . एक चना भाड़ नहीं फोड़

सकता। भाड़ फोड़ा भी तो उसमें ताकत...ताकत तो उसी स्कालरशिप की ही होगी।...बुरे...बुरे मार्गों से भी जो धन पैदा होता है...वह...वह मैला नहीं रहता। उन हीरों में वही आब रहती है, उन मोतियों में वही पानी रहता है, उन अशर्फियों में वैसी की वैसी चमक और उन...उन रुपयों में भी वैसी की वैसी रौनक। दुनियाँ इस चमक से अन्धी और इस रौनक से बहरी हो जाती है और उस चमक के पीछे उस खून के इतिहास को कौन सुनता है ? कौन...कौन उसे देखता है ?...ये धनवान...ये संपत्तिशाली समाज के स्तंभ, समाज के भूषण, समाज के सिर-मौर हैं।

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतिमान् गुणज्ञः
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ते।

(कुछ रुक कर) और...और यह वित्त...यह अपार कंचन...(एक कश खींच कर) मेरे सामने...सामने रखा है, नजर...नजर घुमाने भर की, हाथ...हाथ बढ़ाने भर की, कदम...कदम उठाने भर की जरूरत है। (कुछ रुक कर) फिर किस...किस लिए यह तप...तपस्या कर रहा हूँ ? अगले... अगले जन्म...अगले जन्म के लिए, जो मिथ्या...झूठी कल्पना है ? अरे एक ही बार जन्म..एक ही जिन्दगी है। और...और फिर इन आदर्शों तथा सिद्धान्तों का लोग...लोग मजाक उड़ाते हैं। कहते हैं कैसा बेवकूफ़ है कि सब कुछ सामने रहते हुए भी इस तरह...इस तरह रह रहा है।...इस प्रकार जिन्दगी बसर कर रहा है। सब...हाँ सभी ने इस तरह मजाक उड़ाने का षड्यंत्र...हाँ षड्यंत्र सा किया है। और यदि मैं...मैं भी धनवान हो जाता तो ?...तो ...सब...सब षड्यंत्र करते मुझे बुद्धिमान, हाँ बुद्धिमान, हाँ हाँ महान बुद्धिमान कहने का। (कुछ रुक कर शराब पी बैठ कर) पर...पर अब उल्टा कदम उठाऊँ कैसे ? उस ओर हाथ बढ़ाऊँ कैसे ? उस तरफ नजर घुमाऊँ कैसे ? थूक कर ...थूक कर...चाटूँ ? अब कहीं फिर अनुनय विनय हो, आरजू मिन्नत हो... एक...अरे एक चिट्ठी ही आ जाय। (कुछ रुक कर एक कश खींच) या...या फिर मेरा ही कोई नाटक कोई उपन्यास सफल हो जाय ! एक ड्रामा का मैन्सक्रिप्ट नाटक कम्पनी को दिया है, एक का एक प्रकाशक को। उत्तर...उत्तर भी तो आज ही मिलना है। (शराब पी कुछ रुक कर) अचला...अचला तुम भी मुझे भूल

गयीं? . . .एक . . .पोस्टकार्ड तक नहीं। समझा था जिस तरह . . .जिस तरह उस दिन जहाज के कैबिन में आई थीं, फिर . . .फिर घूम भटक कर लौट आओगी। . . .कितनी . . .कितनी प्रतीक्षा की मोटर के हार्न सुन . . .घोड़े की टाप सुन, कदमों की आहट सुन, . . .कितनी . . .कितनी बार जल्दी से बाहर निकला सपनों से चौंक . . .चौंक कर, नींद से जाग-जाग कर कितनी दफा, कितनी दफा बाहर . . . बाहर झपटा ? पर . . .आशा . . .आशा सचमुच . . .सचमुच ही शायद जाग्रत मनुष्य का स्वप्न, हाँ स्वप्न है । अब . . .अब तो तीन वर्ष, हाँ तीन साल बीत गये (कुछ रुक कर) जहाज के उस वक्त और इस समय में फर्क . . .फर्क जो है। उस . . . उस वक्त निर्धनता के कष्ट नहीं भोगे थे। फिर . . .फिर मेरे और तुम्हारे बीच में . . .बच्चा वह बच्चा नहीं था। (फिर कुछ रुक कर) तो बच्चा प्रेम के बीच में ग्रन्थि . . .ग्रन्थि होता है, कि दीवाल? (शराब पी कुछ रुक कर) उस धन . . .उस संपत्ति ने प्रेम को इस तरह . . .इस तरह ढाँक दिया? . . .उस सोने ने, उन रत्नों के वजन ने उस पर इतना . . .इतना भार रख दिया कि वह उठ . . .उठ ही नहीं पाता? . . .क्यों नहीं . . .क्यों नहीं? सोना सब से . . .सभी से वजनी धातु जो होती है और रत्न . . .रत्न तो पत्थर है ही। (एक जोर का कश खींच कर कुछ विचारते हुए) मेरा . . .मेरा स्थान भी तो किसी ने नहीं ले लिया है। (कुछ रुक कर) एक फ्रेन्च प्रावर्ब है : "handsome, good, rich and wise is a woman four stories high" ऐंसी ऊँची तुमको मैं . . . मैं पा हाँ पा कैसे गया? पा . . .पा गया तो रख . . .रख न सका, इसी . . .इसीलिये क्षणिक . . .क्षणिक सुख के पश्चात् यह . . .यह कभी . . .कभी न मिटने वाला दुख . . .दुख मिल रहा है। एक . . .एक बाल, हाँ, बाल बराबर आनन्द के एवज में मीलों . . .मीलों लम्बा पश्चाताप हो रहा है। (शराब पी कर) मेरा . . .मेरा हाल . . . मेरा हाल जानती हो? (कुछ रुक कर) सब कुछ . . .सब कुछ होने पर अभी . . . अभी भी तुम्हारे . . .तुम्हारे रूप से ही आँखें भरी हुई हैं। . . .तुम्हारे स्वर से ही कान परिपूर्ण हैं। अरे सारा . . .सारा हृदय तुमसे ही व्याप्त है। . . .उठते-बैठते . . .लिखते-पढ़ते . . .न जाने कितनी . . .कितनी बार तुम सामने घूम जाती हो। न जाने कितने . . .कितने दफा स्वप्नों में तुम्हें देखता हूँ। तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम ही तो मेरा जीवन है। वही . . .वही चला जाय तो . . .तो मुझमें जीवित . . .जीवित

कौन सी चीज रह जाय ? तुम्हारे प्रति प्रेम ही मेरा सौन्दर्य है। वही..वही चला जाय तब...तब तो मैं...मैं भी दुनियां के सदृश फूहड़, हाँ हाँ फूहड़ हो जाऊँ। (कुछ रुक कर) आह प्रेम शायद सब से अधिक सुन्दर सब से अधिक भयानक, सब से अधिक ठण्डी, सब से अधिक गरम, सब से अधिक मीठी और सब से अधिक कड़वी चीज है।...(शराब के गिलास को खाली कर) तुम्हारे सिवा सारी...स्त्रियाँ ...सुन्दरियाँ और रमणियाँ (खाली गिलास को देखते हुए) इस खाली गिलास सदृश...एक रहित शब्द एक रहित भाव से पूर्ण दिखायी देती हैं। (कुछ रुक कर) "गृहं तु गृहिणी हीनं, कान्तारादीन रिच्यते।"

[कुछ देर तक चुपचाप उस खाली गिलास को देखने के बाद विद्याभूषण शराब की बोतल उठा कर उससे शराब गिलास में उड़ेलता है, जब उससे कुछ नहीं निकलता तब वह क्रोधित हो उसे जोर से जमीन पर पटकता है। बोतल टुकड़े-टुकड़े हो जाती है। वह गिलास को टेबिल पर रख, उन टुकड़ों को देखते हुए जोर से एक कश खींचता है। उसी समय दरवाजा खोल एक आदमी का प्रवेश। आगन्तुक अधेड़ अवस्था का, गेहुएँ रंग का, ऊँचा, पूरा मनुष्य है। छोटी-छोटी मूँछे हैं। शेरवानी और चूड़ीदार पायजामा पहिने है, सिर पर साफा बाँधे है। उसके हाथ में एक मैन्सक्रिप्ट है। विद्याभूषण उसकी आहट पा खड़ा होता है। उसे देख उसकी नजर अपने सामने पड़े हुए बोतल के टुकड़ों पर पड़ती है। वह सहम सा जाता है; पर निरुपाय मनुष्य की तरह आगे बढ़ आगन्तुक का स्वागत करता है। दोनों कुर्सियों पर बैठ जाते हैं। विद्याभूषण सिगरेट बुझा कर फेंक देता है।]

आगन्तुक : (मैन्सक्रिप्ट को टेबल पर रखते हुए बोतल के टुकड़ों की तरफ देख) मैंने आपका नाटक देख लिया।

विद्याभूषण : (उत्सुकता से) कैसा है ?

आगन्तुक : कैसा कहूँ ? (कुछ रुक कर) इतना कह सकता हूँ कि हमारी कंपनी इसे खेल न सकेगी।

विद्याभूषण : यह क्यों ?

आगन्तुक : (गंभीरता से) देखिये...देखिये वह खेल के लायक है ही नहीं।

विद्याभूषण : पर क्यों ? इस वक्त योरप में इंबसन का, जो नये से नया टेकनीक है, जिस टेकनीक के अनुसार इंगलैंड के बर्नाड शा, फ्रान्स के ब्रूइवज, जर-

मनी के हासमैन, रशा के शेकाव, बेलजियम के मार्टलिङ्क, स्वीडन के स्टैण्डबरी ने लिखा और लिख रहे हैं इस...

आगन्तुक : (बीच ही में) लिखा होगा और लिख रहे होंगे पर इस देश में ऐसे नाटक नहीं खेले जा सकते। एक तो यह बहुत छोटा है, सिर्फ अढ़ाई घण्टे का। देखने वाले रुपया देते हैं और पूरे पाँच घण्टे तमाशा देखना चाहते हैं। फिर इसके एक-एक अंक में एक-एक दृश्य है। बदलती हुई सीनरी के चमत्कार हम नहीं दिखा सकते। ड्रैसेज में भी रोज पहिनने ओढ़ने के कपड़े हैं। नये-नये तरीके की ड्रैसेज की चमक-दमक से भी हम वंचित। नाटक के लिए जगह ही नहीं। गाने बड़े गंभीर। कोई बुरी औरत नहीं, कोई मजाकिया, कोई विदूषक नहीं। यह नाटक नाटक ही नहीं है।

विद्याभूषण : (झुंझला कर) तो यह क्या है?

आगन्तुक : यह तो आप लिखने वाले जाने, पर नाटक तो नहीं है, और चाहे कुछ भी हो। (खड़े होते हुए) मुझे इजाजत दीजिये, मुझे बहुत काम है।

[आगन्तुक जाता है। विद्याभूषण उसे दरवाजे तक पहुँचा और दरवाजा बन्द कर लौट कर मैन्सक्रिप्ट के टुकड़ों को उठाने लगता है।]

विद्याभूषण : (टुकड़े उठाते हुए) नाटक...नाटक ही नहीं है...और चाहे कुछ भी हो (कुछ रुक कर) कैसे मूर्ख, कैसे बेवकूफ हैं ये नाटक कंपनियों वाले। (टुकड़ों को खिड़की से बाहर फेंकते हुए) सब के सब...

[दरवाजा खोल कर एक आदमी का प्रवेश आगन्तुक, करीब बीस वर्ष की अवस्था का गेहुयें रंग का, दुबला-पतला आदमी है। कोट और धोती पहिने हुए है, सिर पर काली टोपी लगाये है। उसके हाथ में कई मैन्सक्रिप्ट हैं। विद्याभूषण उसके आने की आहट पाकर उसका स्वागत करता है, दोनों कुर्सियों पर बैठते हैं]

आगन्तुक : (मैन्सक्रिप्ट बस्ते में से ढूँढ़ कर, एक निकाल विद्याभूषण को देते हुए) मैंने आपका मैन्सक्रिप्ट देख लिया।

विद्याभूषण : (मैन्सक्रिप्ट लेते हुए) ठीक नहीं है?

आगन्तुक : यह तो मैं कैसे कहूँ, पर हमारी संस्था इसे प्रकाशित न कर सकेगी।

विद्याभूषण : इतना मैं आपसे कह सकता हूँ कि यह नये से नये इबसेनियन टेकनीक पर लिखा गया है।

आगन्तुक : इबशन, शा इत्यादि को मैंने भी पढ़ा है वे सालीलाकी कभी नहीं लिखते, गाने कभी नहीं लिखते।

विद्याभूषण : यह इसकी और नवीनता है, मैंने सालीलाकी और गानों को यह सिद्ध करने के लिए दिखाया है कि नाटक की स्वाभाविकता की पूर्ण रक्षा करते हुए इन चीजों का नाटक में सफलता पूर्वक उपयोग किया जा सकता है (मैन्सक्रिप्ट खोजते हुए) देखिये कुछ आपको बताता हूँ।

आगन्तुक : (जल्दी से पिण्ड छुड़ाते हुए) क्षमा कीजिए, मुझे अन्य कई स्थानों को जाना है। (उठते हुए) मैं पूरा नाटक पढ़ चुका हूँ और मुझे खेद है कि हम इसे प्रकाशित न कर सकेंगे।

[आगन्तुक जाता है, विद्याभूषण मैन्सक्रिप्ट को देखते हुए वैसा का वैसा बैठा रहता है।]

विद्याभूषण : (मैन्सक्रिप्ट को देखते हुए लम्बी साँस लेकर) भवभूति ने जिस एक करुण रस को ही रस माना है, उस रसकी प्रधानता, कालीदास सी उपमायें, एसचीलस का चमत्कार, गेटे की उड़ान शेक्शपियर का चरित्र-चित्रण इबसन की समस्या, शा का व्यंग और मेरे. . .मेरे संस्कृत. . .अंग्रेजी एवं मातृभाषा के अध्ययन के निचोड़ तथा मेरी. . .मेरी जीवन की अनुभूतियों के आधार रहते हुए भी यह नाटक (हाथ हिलाते हुए) खेला नहीं जा सकता, प्रकाशित नहीं किया जा सकता। (कुछ रुक कर) कोई. . .कोई चिन्ता नहीं, आज नहीं तो किसी. . .किसी दिन इसका मान होकर. . .होकर रहेगा। (कुछ रुक कर) भवभूति ने कहा ही है—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्तु ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्मा;
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।

(कुछ रुक कर) और पोप कहता है, "Authors like coins grow dear as they grow old."

(एक सिगरेट दबा) पर. . .पर मुझे. . .मुझे तो आज. . .आज चाहिए निर्वाह के लिए धन—(जोर का कश खींच कुछ ठहर कर) तो—तो. . .मैं. . .मैं कष्ट भी पा रहा हूँ और अपना केरियर. . .केरियर भी नष्ट कर रहा हूँ (फिर

रुक कर) मैं चाहूँ...मैं चाहूँ तो अपनी...अपनी निज की एक नहीं दस...हाँ, एक नहीं दस नाटक कंपनियाँ बना सकता हूँ...एक...एक नहीं..'सौ, पुस्तकें प्रकाशित कर सकता हूँ। (सिगरेट के धुँये को छोड़ते हुए घूम-घूम कर उसकी उड़ने वाली कुण्डलियों को देखते-देखते) पर...पर सवाल यह...यह नहीं, सवाल है किसी भी आदर्श पर विश्वास का; उसकी ओर बिना रुके बढ़ने का। प्रश्न पहिले...हाँ, हाँ पहिले कदम का नहीं है, प्रश्न है अन्तिम...अन्तिम...छलंग का। (कुछ रुक कर) अरे कष्ट...कष्ट तो केवल निकम्मों हाँ, निकम्मों को तोड़ता है। जो कुछ है, जिनमें आदर्शों और सिद्धान्तों पर विश्वास है, उनको... उनकी ओर बढ़ने का साहस ...हाँ साहस है, उन्हें...उन्हें तो कष्ट और ज्यादा मजबूत बनाते हैं। (फिर कुछ रुक कर) आत्मा को पैसे के लिए...जीवित आत्मा को निर्जीव पैसे के लिए बेच दूँ! यह...यह तो व्यापारिक दृष्टि से भी बुरा... बहुत बुरा व्यापार होगा। (कुछ रुक कर) बत्ती बुझा हाँ, बत्ती बुझा दूँ। अँधेरे... अँधेरे जीवन की समस्या का हल कदाचित् अँधेरे में ही सूझ पड़े। (बिजली की बत्ती का स्विच दबाता है)

लघु यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान : डर्बन में लक्ष्मीदास के मकान में अचला का कमरा।

समय : प्रातः काल।

[अचला घूमती हुई गा रही है। उसके मुख पर उस तरह की शान्ति दिखाई देती है जो किसी बड़ी भारी समस्या के हल कर लेने पर आपसे आप मुख पर जाती है। उसकी चाल में भी उस शान्ति का प्रभाव है। उसके पग धीरे-धीरे उठते हैं; उनमें गम्भीरता है।]

गान

हूँ अबला पर बल है
है निर्णय अटल उपल सा, फिसलन ? वह तो मन का छल है
सुख की धूप ढाक लेती जब दुख की धूमिल छाया

तम के पथ पर डगमग डोले मन की मोहन माया
आन्दोलन केवल है

[लक्ष्मीदास का जल्दी-जल्दी प्रवेश। वह अत्यधिक उद्विग्न है। उसके हाथ में एक लिखी हुई लम्बी चिट्ठी है।]

लक्ष्मीदास : (अत्यन्त भर्राते हुये स्वर, टूटते हुये शब्दों में) बेटा—बेटा (चिट्ठी दिखाते हुए मानों शब्दों में कुछ कहने की हिम्मत नहीं) यह...यह चिट्ठी...चिट्ठी...(खड़े न रह सकने के कारण सोफा पर गिर सा जाता है।)

अचला : (नजदीक की कुर्सी पर लेटे हुए गम्भीरता से) मैं जानती थी, पिता जी, आप को मेरी इस चिट्ठी से भारी आघात पहुँचेगा, बड़ा भारी धक्का लगेगा (कुछ रुक कर) मुँह से कहने की मेरी हिम्मत ही नहीं हुई।

लक्ष्मीदास : (आँसू बहाते हुए) पर...पर...बेटा...बेटा तेरे...तेरे (हिचकियाँ लेते हुए) सरस्व...सरस्वती के जाने...जाने...के बाद... मैं...मैं...जीता...जीता रह...

अचला : (लम्बी साँस लेकर, पर उसी गंभीरता से) पर पिता जी, आप तो खुद एक धर्मनिष्ठ हिन्दू हैं। विदेश में जीवन का मुख्य अंश बिताने पर भी आपका ईश्वर पर, हिन्दू देवताओं पर, अवतारों पर विश्वास है। आपने अंग्रेजी के साथ मुझे संस्कृत भी पढ़वाया, धार्मिक शिक्षा दिलाई, भारतीय गानविद्या सिखलाई। किसी हिन्दू पत्नी का अपने पति को छोड़ इस तरह रहना क्या उचित बात है?

लक्ष्मीदास : (कुछ शान्त होते हुए) मैं...कहाँ...कहाँ कहता हूँ, और इसीलिए...इसीलिए तो विद्याभूषण के यहाँ बुलाने की कोशिश चल रही है। बम्बई...बम्बई आफिस और काहे के लिए खोला गया है?

अचला : (कुछ घृणा से) बम्बई आफिस? बम्बई आफिस खुले तीन वर्ष हो चुके। उसने पोस्ट आफिस के सिवा और क्या किया है?

लक्ष्मीदास : (आँसू पोंछ और कुछ शान्ति से) यही उसे करना चाहिए था। हर मेल में उसने विद्याभूषण का व्यौरेवार हाल भेजा है, विद्याभूषण को बिना मालूम हुये, पर इतने दूर पर भी पूरा पूरा पता लगा कर, और विद्याभूषण का जो वृत्त आ रहा है उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि वह वक्त दूर नहीं है जब विद्याभूषण

आफ्रिका के लिए या तो रवाना होगा, या यहां आने के लिए सफर खर्च भेजने के लिए केबिल भेजेगा।

अचला : यह आप कैसे कह सकते हैं?

लक्ष्मीदास : (साहस से) मनुष्य स्वभाव से परिचित होने तथा विद्याभूषण की दिन-दिन गिरती हुई भावी हालत के कारण। अब वह बम्बई के गन्दे से गन्दे होटल में रहने लगा है। उसके लेख भी पत्रों में नहीं छपते। इस दशा में बिना निर्वाह के किसी साधन के वह बहुत दिन वहाँ कैसे रह सकता है?

अचला : (जल्दी से) तो पिता जी आप उन्हें समझ ही नहीं पाये। बम्बई न रह सकेंगे तो किसी देहात में चले जायेंगे, ; वहाँ भी न रह पायेंगे तो हिमालय का रास्ता पकड़ लेंगे। और फिर...फिर तो मुझे उनके दर्शन...दर्शन ही असम्भव हो जायेंगे।

लक्ष्मीदास : सामने इतनी बड़ी संम्पत्ति को देखते हुए भी?

अचला : क्यों क्या, दुनिया में किसी ने बड़ी-बड़ी संपत्तियाँ, बड़े-बड़े साम्राज्य छोड़े नहीं हैं? राम ने क्या किया था? गौतम बुद्ध ने क्या किया था?

लक्ष्मीदास : विद्याभूषण राम बुद्ध नहीं हो सकता?

अचला : पिता जी, मैं उन्हें भी राम बुद्ध के सदृश ही प्रकृति की महान कृति मानती हूँ, और अपने गत वर्षों के जीवन से उन्होंने वैसी ही कठिन सिद्धि भी की है।

लक्ष्मीदास : राम और बुद्ध की बात छोड़ दे, बेटा, पर हाँ इतना मैं मानता हूँ कि वह बहुत सख्त आदमी है। पर भूख की आग जब षट्रस व्यंजनों से भरा हुआ थाल रखा हो, हमेशा के लिए हाथ फेर सके, नहीं रहने दे सकती।

अचला : (विचारते हुए) पिता जी आप...आप गल्ती कर रहे हैं। उनमें राम...और बुद्ध वाली क्षमता है (कुछ ठहर कर) और...और चाहे नहीं... मैं...मैं हूँ उनकी पत्नी, हिन्दू पत्नी, पिता जी मेरा कर्त्तव्य...मेरा धर्म तो सीता और सावित्री के पदचिन्हों पर चलना है।

लक्ष्मीदास : (लम्बी साँस लेकर) और तुम समझती हो कि तुम्हारा यह प्रयत्न...सफल...सफल होने वाला है? (झुँझला कर) एक दफा कर के देख चुकी हो।

अचला : इस असफलता पर मैं शर्मिन्दा हूँ पिताजी, पर...पर इसकी

भूमिका जोश. . .सिर्फ जोश थी। उस शर्मिन्दगी से भी ज्यादा लज्जा मुझे इस बात पर है कि मैंने तीन वर्ष. . .इतना दीर्घ समय, हाय उनके बिना यहाँ. . .कैसे बिता दिया। मैं यदि यहाँ आ भी गई थी तो दूसरे जहाज से ही मुझे लौट जाना था। पर पिता जी अब की बार जो जा रही हूँ, वह तीन वर्षों के विचार के बाद। इस दफा असफल न होऊँगी।

[लक्ष्मीदास कोई उत्तर न दे कर कुछ देर चुप रहता है। उसकी उद्विग्नता फिर से लौट आती है।]

लक्ष्मीदास : (भर्राये हुए स्वर में) पर मैं. . .मैं समझता हूँ। तुम और वे दोनों. . .हाँ, वे दोनों ही न औरत हो न आदमी, दोनों में लड़कपन है, दोनों लड़की लड़के हो, नहीं, नहीं क्यों दुधमुँहे बच्चे !

[अचला कोई उत्तर नहीं देती वह सिर झुका लेती है, पर उसकी दृढ़ता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। लक्ष्मीदास अचला की ओर देखता रहता है। कुछ देर निस्तब्धता।]

लक्ष्मीदास : (अचला की दृढ़ता समझ कर उद्विग्न स्वर में) और. . .और सरस्वती. . .सरस्वती को भी ले जाओगी ? . . .वह. . .वह तो अब मेरे. . .मेरे पास रह सकता है।

अचला : (गंभीरता से) उसे यदि मैं आपके पास छोड़ सकती तो मुझे बड़ा हर्ष होता। (लक्ष्मीदास रोने लगता है) पर. . .पर पिता जी, मुझे बड़ा. . .बड़ा ही खेद है कि मैं ऐसा न कर सकूँगी। (कुछ रुक कर) पिता जी उसका लालन-पालन उनके आदर्शों, उनके सिद्धान्तों के अनुसार ही होना चाहिए।

लक्ष्मीदास : (क्रोध से) उसके आदर्श ! उसके सिद्धान्त बहुत. . .बहुत मैंने ऐसे आदर्श और ऐसे सिद्धान्त देखे हैं।

अचला : (धीरे धीरे) लेकिन पिता जी, मेरा. . .मेरा भी ख्याल है कि वे आदर्श, वे सिद्धान्त ही ठीक हैं। (लक्ष्मीदास का आया हुआ क्रोध जितनी जल्दी आया था उतनी जल्दी हवा हो जाता है।) पिता जी अमीरी में पला हुआ बच्चा निकम्मा होता है। अगर ऐसे बच्चे को मेरे सदृश गरीबी का सामना पड़ जाय तो शायद वह अपने कर्तव्य, सच्चे धर्म को भी भूल जाता है। उत्तराधिकार से वंचित खुद श्रम कर जीविका उपार्जन करना ही सच्चा जीवन है। (कुछ रुक कर) और

पिता जी, अपने साढ़े तीन हाथ के शरीर के लिए अगणित...अगणित की लूट...

लक्ष्मीदास : (फिर क्रोध से बीच ही में) लूट ? लूट से तेरा क्या...क्या मतलब है ? बेटा, दुनिया में एक दूसरे को लूटने के सिवा...इस मत्स्य न्याय के अतिरिक्त और है ही क्या ? कोई किसी के शरीर को लूटते हैं, कोई हृदय को, कोई दिमाग को। विद्याभूषण ने तेरा हृदय लूटा है। लेख और किताबें लिख कर लोगों के दिमाग लूट रहा है। अगर मैं लुटेरा हूँ तो वह भी लुटेरा है। (कुछ रुक कर) दुनिया को छोड़ देने वाले वैरागी और संन्यासी ही शायद बिना किसी को लूटे जिन्दा रह सकते हैं।

अचला : वैरागियों और सन्यासियों के सदृश ही दुनियाँ में रहना चाहिए, पिता जी।

लक्ष्मीदास : (गंभीरता से) यह व्यवहार्य बात नहीं है।

[अचला कोई उत्तर नहीं देती। लक्ष्मीदास सिर झुका, कुछ सोचने लगता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

लक्ष्मीदास : (धीरे धीरे सिर उठा कर साहस से) तो बेटा, तुम सरस्वती को लेकर जा रही हो ?

अचला : (गंभीरता से) पिता जी, अन्तिम और अटल निश्चय करने के बाद ही मैंने आपको पत्र लिखा है।

लक्ष्मीदास : और जानती हो मैंने क्या निश्चय किया है ?

अचला : क्या ?

लक्ष्मीदास : (अत्यन्त साहस से) तुम्हारे साथ चलने का।

अचला : (जल्दी से) तब तो, पिता जी, मैं यहीं आत्महत्या कर लूँगी। मैं हिन्दुस्थान जाऊँगी ही नहीं।

लक्ष्मीदास : (अधीर हो कर) बेटा...बेटा...

अचला : (अत्यन्त गंभीरता से) पिताजी, मैं महान व्रत का संकल्प करके जा रही हूँ; व्रत की सिद्धि तक उन तक से न मिलूँगी। क्या निश्चय करके जा रही हूँ, क्या करूँगी, सब कुछ क्योंकर, मैंने आपको पत्र में लिखा है। (गिड़गिड़ा कर)

आपने मेरे लिए क्या नहीं किया पिता जी, आपको एक शुभ और महान संकल्प में बाधा न डालनी चाहिए।

[लक्ष्मीदास कोई उत्तर न देकर एक लम्बी साँस ले सिर झुका लेता है। अचला एकटक उसकी ओर देखती है। कुछ देर फिर निस्तब्धता रहती है।]

लक्ष्मीदास : (धीरे धीरे सिर उठा, आँखों में आँसू भर, भर्राये हुए स्वर में) तो मैं तेरा और सरस्वती का वियोग जन्म भर सहन करूँ? इस बुढ़ापे...इस बुढ़ापे में तू...मुझे...मुझे यह दारुण दुख देना चाहती है।

अचला : नहीं, पिताजी, जन्म भर नहीं, थोड़े...बहुत थोड़े दिन। आफिस आपको हर मेल से मेरी खबर भेजता रहेगा। ज्योंही मैं उनके साथ रहने के योग्य हो गई, सरस्वती का उनके आदर्शों, उनके सिद्धान्तों के अनुसार पालन-पोषण होने लगा, त्यों ही मैं उनके पास चली जाऊँगी। और उस वक्त...उस वक्त आप भी भारत आ जायें। (कुछ रुक कर) हाँ, तब...तब आपको भी अपना जीवन परिवर्तित करना पड़ेगा। उस समय आपको ताजमहल में न ठहर कर झोपडे में रहना होगा...और यह...यह संपत्ति...सारी संपत्ति (चुप हो जाती है)।

लक्ष्मीदास : (उत्सुकता से) हाँ इस सारी संपत्ति का क्या करूँ?

अचला : (जल्दी से, मानों न कहने से फिर कहने का ही साहस न चला जाय) उन...उन हिन्दुस्तानियों के भले के लिए दान दे दीजिए, जिनके पसीने, जिनके खून से इसका उपार्जन हुआ है।

लक्ष्मीदास : (क्रोध से) यह मेरे पसीने, मेरे खून से उपार्जित हुई है; मुझे कहीं से उत्तराधिकार में नहीं मिली है। मैंने श्रम...घोर श्रम से इसे पैदा किया है। मैं झोपड़ों में रह चुका हूँ, अचला, और झोपड़ों ही में नहीं दरख्तों के नीचे भी रह चुका हूँ। मैंने कपकपाती हुई शीत, और झुलसाती हुई धूप को, दिनों, महीनों नहीं वर्षों बरदाश्त किया है। अब इस चौथेपन में मुझे फिर से झोपड़ों में रहने की हवस नहीं रह गई है। फिर से उन कष्टों को भोगने की अभिलाषा बाकी नहीं है। न यह चाहता हूँ कि मेरी संतति को कष्टों को भोगना पड़े। दान-पुण्य की हमारे शास्त्रों ने व्यवस्था की है। अंश का दान ही शास्त्रसिद्ध है, सर्वस्व का नहीं।

अचला : पर पिता जी, सर्वस्व के दान भी हमारे यहाँ हुए हैं। महाराज रघु ने सर्वस्व दान कर दिया था। सम्राट् हर्षवर्धन प्रयाग में सर्वस्व दान किया करते थे।

लक्ष्मीदास : इस लिये कि दूसरे दिन से उनके खजाने फिर से भरने के साधन नहीं जाते थे; नहीं तो वे भी कभी ऐसी मूर्खता नहीं करते।

[अचला कोई उत्तर न दे, सिर झुका , कुछ सोचने लगती है। लक्ष्मीदास एकटक अचला की ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

लक्ष्मीदास : और यह भी सोचा है कि यदि मैंने सर्वस्व दान कर दिया और फिर कहीं तुझे रुपये की जरूरत पड़ी, बीमारी . . .तेरे बच्चे की ही बीमारी के लिए या और किसी लिये तो रुपया कहाँ. . .कहाँ से आयेगा ?

अचला : (सामने शून्य की ओर देखते हुए, सिर उठा, जल्दी-जल्दी) पर. पर पिता जी आजकल. . . आजकल मुझे न जाने कितने घर इस नेटाल. . .के उस फार्म. . .उस फार्म का वह दृश्य. . .वह दृश्य दिखाई देता है जिसमें. . .जिसमें उन मजदूरों. . .उन मजदूरों को. . .आपने चाबुक. .उस सुल्तान दुल्हा से मारा था। उस औरत. . .उस औरत के उस वक्त. . .उस वक्त के चीत्कारों. . .दारुण चीत्कारों से मेरे कान भर. . .भर जाते हैं। (चुप हो, एक विचित्र प्रकार की दृष्टि से सामने की ओर ही देखती रहती है।)

लक्ष्मीदास : (आश्चर्य से अचला की ओर देखते हुए) बेटा. . .बेटा. . .

यवनिका

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

स्थान : मध्य प्रान्त के एक गाँव में अचला के देहाती मकान का एक कोठा।

समय : तीसरा पहर।

[कोठा न बहुत बड़ा है न छोटा; वह बहुत ही साफ-सुथरी तथा व्यवस्थित हालत में है। दीवालें छुई से पुती हैं, और कच्ची होने पर भी एकदम स्वच्छ। दाहिनी ओर की दीवाल में एक दरवाजा है, जिसके खुले रहने के कारण मकान के बाहर के छोटे से देहाती बगीचे का कुछ हिस्सा दिखाई देता है। बगीचे में तुलसी, गुलाब, बेला, चमेली, जूही आदि के पौधे दिखाई देते हैं। पौधों को देखने से जान पड़ता है कि वे एक साल से अधिक पुराने नहीं हैं। पीछे की दीवाल में एक खिड़की है जिससे नजदीक पड़ती जमीन और दूर पर एक गाँव के कुछ झोंपड़े तथा उनके बाद पहाड़ियों की कुछ श्रेणियाँ दिखाई पड़ती हैं। ये श्रेणियाँ पलास के पत्तों से हरी भरी हैं। खिड़की के आस-पास कपड़े टाँगने की खूंटियाँ हैं। एक तरफ की खूंटियों पर अचला की दो साड़ियाँ और दो शलूके टँगे हैं। और दूसरी तरफ की खूंटियों पर सरस्वती चन्द्र के वस्त्र। कपड़े सब मोटे हैं, पर अच्छे धुले और इस्त्री किये हुए हैं। टाँगने के ढंग से जान पड़ता है कि उसमें भी व्यवस्था का उपयोग किया गया है। साड़ियां चुन कर टाँगी गई हैं और बाकी कपड़े भी ठीक ढंग से। बाँई ओर की दीवाल के नजदीक एक बड़ा और एक छोटा पलंग तथा एक देहाती अलमारी रखी है। दरवाजे और खिड़की की चौखट, किवाड़ तथा पलंगों एवं अलमारी की लकड़ी साधारण से साधारण कोटि की होने पर भी, तथा इन सब की बनावट देहाती होने पर भी, सब चीजें बहुत सफाई से पोंछी-पाँछी तथा तेल-पानी की हुई हैं। दोनों पलंगों पर साधारण बिस्तर हैं। बिस्तरों की चादरें और तकियों की खोलियां बहुत ही स्वच्छ हैं। आलमारी के नजदीक मिट्टी और काठ के कुछ खिलौने रखे गये हैं। खिलौने भी देहात के बने हुए हैं, पर इधर-उधर पड़े नहीं हैं।

व्यवस्थित से रखे हैं। कोठे की छत पर बोरों की चाँदनी है, पर वह तान कर अच्छी तरह बाँधी गई है। उसके चारों तरफ लाल कपड़े की झालर है। कमरे की जमीन गोबर से लिपी है और उसकी लिपाई से जान पड़ता है कि वह रोज लीपी जाती है। दरवाजे के पास जमीन पर गुलाल की राँगोली की हुई है। पीछे की दीवाल से सटी हुई जमीन पर एक साफ सुथरी लाल रंग की देहाती जाजम बिछी है। इसी पर बैठी हुई अचला चरखा चला गा रही है। चरखे के पास ही कुछ पौनियाँ रखी हैं। और एक चकरी पर कसा हुआ सूत। कते हुए और काते जा रहे सूत के देखने से जान पड़ता है कि वह चालीस काउण्ट से कम का नहीं। अचला की वेष-भूषा फिर बदल गई है। वह एक मोटी साड़ी और वैसा ही शलूका पहिने है। हाथों में एक काँच की चूड़ी के सिवा उसके शरीर पर और कोई भूषण नहीं है। उसके मस्तक पर हिन्दू स्त्रियों का सौभाग्यचिन्ह लाल टिकली भी अब हमें दृष्टि-गोचर होती है। उसकी अवस्था उतनी ही जान पड़ती है जितनी चौथे अंक में थी। उसके मुख पर शान्ति और उत्साह का भाव है।]

गान

निकल रहा कैसा यह तार
हे मन तू होड़ लगा तू इससे मत जाना रे हार
धवल तन्तु से खिंच यह जीवन पहुँचेगा उस पार
टूट न जावे तार बीच में दिन हैं दो या चार
चलना तो क्रम है ही इसका रुक जाना संहार
गुत्थी बन कर उलझ न जावे, बन जावेगा भार

[एक लड़की का प्रवेश। उसकी अवस्था तेरह-चौदह साल की होगी। वेषभूषा देहाती, हाथ में उसके एक कपड़ा है।]

लड़की : (नजदीक बैठ, कपड़ा रखते हुए) मां जी, शलूका काट देंगी?

अचला : (उठ कर अलमारी के पास जाते हुए) हां...हां क्यों नहीं बहन। (अलमारी खोलती है, जिसका सारा सामान व्यवस्थित रूप से जमा हुआ है। उसमें से एक बड़ी सी कैंची निकाल अलमारी बन्द कर, वापिस बैठ कर कपड़ा खोलते हुए) अब सीने तो लगी न तू?

लड़की : (हँसते हुए) आप सीना जो स्कूल में सिखाती हैं, फिर भी न सीखूंगी ?

अचला : (कपड़ा काटते हुए) क्यों मैं काटना भी तो सिखाती हूँ। काटना तुमने नहीं सीखा ?

लड़की : (हँसते हुए) काटने में अभी बिगड़ने का डर लगता है।

अचला : (काटते हुए) देख, कुछ पुराने बेकाम कपड़े पर अभ्यास कर, जल्दी आ जायगा।

लड़की : नहीं, मां जी, एक महीने के अन्दर स्कूल में ही सीख जाऊँगी। आप स्कूल में कितनी अच्छी तरह सिखाती हैं।

[उस लड़की की उम्र की, उसी तरह की वेषभूषा वाली एक लड़की का प्रवेश, उसके हाथ में एक सिला शलूका है।]

दूसरी लड़की : (शलूका अचला को दिखाते हुए) देखिये मां जी, कैसा सिला है ?

अचला : (जो अब तक शलूका काट रही थी, काटना रोक कर दूसरी लड़की का शलूका हाथ में ले इधर-उधर से देख) बहुत अच्छा। (शलूका उसे वापिस देते हुए) तुझे इस साल सिलाई की परीक्षा में सबसे ज्यादा नंबर मिलेंगे। (फिर काटने लगती है।)

पहली लड़की : क्यों अभी तो परीक्षा को छै महीने हैं, तब तक मैं इससे भी अच्छा सीने लगूंगी और काटने भी, मां जी।

[एक औरत का प्रवेश। औरत की अवस्था ४० वर्ष के करीब है। वेषभूषा देहाती है।]

औरत : (नजदीक आकर बैठते हुए) अचला बहन, एक तकलीफ देने आई हूँ।

अचला : (जो अब काटना खत्म कर चुकी है, कटा हुआ शलूका पहली को देते हुए) कहो कहो बहन ?

औरत : आज मेरे दामाद आ रहे हैं, तुम्हारे दो-चार पापड़ माँगने आई हूँ।

अचला : (उठ कर अलमारी की तरफ जाते हुए) हाँ, हाँ अभी लो। (अलमारी खोल कर एक लोहे के डब्बे में से पापड़ निकालती है।)

औरत : क्या कहूँ, तुम्हारे जैसे पतले पापड़ बट ही नहीं सकती। (कुछ रुक कर) और में ही क्या, गाँव में कोई नहीं बट सकता।

अचला : (पापड़ का डब्बा बन्द कर उसे रख, अलमारी बन्द कर १०-१२ पापड़ देते हुए) ये लो बहन।

औरत : अरे ये तो बहुत ज्यादा हैं।

अचला : तो दामाद जी ४-६ दिन रहेंगे भी तो। आज ही थोड़े लौट जायेंगे।

औरत : कल तुम्हें एक तकलीफ और करनी होगी।

अचला : हां हां जी, कहो, तुम्हारी ही तो हूँ !

औरत : मेरी ही क्या बहन, तुम तो सारे गाँव की हो। सभी तुम्हें कोई न कोई तकलीफ देते हैं। कल मेरे यहाँ दामाद के आने के कारण एक छोटी सी ज्योनार है। रसोई की देख रेख करने को तुम्हें आना पड़ेगा।

अचला : स्कूल से सीधी आ जाऊँगी, बहन।

पहली लड़की : हाँ, स्कूल तो मां जी के लिये पहली चीज है।

अचला : कैसे नहीं होगी बेटी, तनख्वाह जो पाती हूँ।

दूसरी लड़की : तनख्वाह तो पहली मास्टरानी भी पाती थीं, मां जी ?

औरत : कौन ऐसी मास्टरानी आई ? और हमारे गाँव की मास्टरानी क्या दूर दूर तक, मास्टरनी ही नहीं, ऐसी चतुर, ऐसी शीलवान औरत नहीं निकलेगी।

अचला : बहन तुम मुझे नाहक लज्जित कर रही हो। (फिर चरखा चलाने लगती हैं।)

औरत : मैं क्या, सारा कस्बा कहता है। किसी के घर में झगड़ा हो तो तुम निपटाओ। किसी के घर बीमारी हो तो तुम औषध का प्रबंध करो। इन अठारा महीनों में तुमने क्या-क्या किया है, जिसमें छ महीने तो तुम घर से निकली ही नहीं। सब कुछ साल भर में ही हुआ है। कैसा साफ-सुथरा गाँव हो गया है। औरतें चरखे चलाने लगीं। कपड़ा बिना जाने लगा। अन्न तो लोग उत्पन्न करते ही थे, पर बहुत से अब अपना-अपना कपड़ा भी बनाने लगे। कितनी लड़कियाँ सीना जानने लगीं, कितनी काटना। गाँव में कैसा सुख, कैसी सान्ती, कैसा उछाह दिख पड़ता है। इस साल जैसी फसल आई, बारह बरसों के एक जुग में भी नहीं आई थी। तुम्हारे कारन ही तो।

अचला : यह तो तुमने गजब कर दिया, मेरे कारण फसल अच्छी आई? क्या कहती हो बहन?

औरत : हाँ...हाँ तुम्हारे कारन। जिस तरह किसी-किसी बहू के घर में पैर पड़ते ही उस घर में लछमी जी छप्पर फाड़ कर फट पड़ती हैं। वैसे ही गाँव में यह सब तुम्हारे पग छेड़े से हुआ है। तुम्हारे पुन्न से बहन सब जगह सुख, सब जगह सान्ती, सब जगह उछाह है, उछाह।

अचला : (मुस्कराते हुए) तो मैं गृहलक्ष्मी ही नहीं ग्रामलक्ष्मी हूँ। क्या कहती क्या कहती हो बहन, क्या कहती हो?

औरत : ठीक, बिलकुल ठीक कहती हूँ। और गाँवलछमी ही नहीं, सारे चौकले की लछमी हो। इन अठारा महीनों में तुमने क्या क्या किया है यह तुम नहीं जानती। तुम जो कुछ यहाँ कर रही हो उसका परभाव कितनी दूर-दूर पड़ रहा है, यह सब तुम्हें नहीं मालूम बहन, मैं तो समझती हूँ कि इस अठारह की संख्या में कोई न कोई बात जरूर है। देखो वेदव्यास जी ने अठारह पुरान लिखे न? महाभारत की भी अठारह परब ही हैं न?

अचला : (हँसते हुए) तो मैंने अठारह महीनों में, अठारह पुराणों, महाभारत की कथा की सी कहानी लिखने के योग्य काम कर डाला।...(कुछ रुक कर) और एक बात तो तुम भूल ही गई बहन। संसार के सर्वश्रेष्ठ उपदेश, गीता में भी अठारह अध्याय ही हैं। (हँसते हुए) बहन गजब कर रही हो।

पहली लड़की : नहीं, मौसी ठीक कह रही हैं, मां जी।

दूसरी लड़की : बिलकुल ठीक।

अचला : (विचारपूर्ण स्वर में) एक बात जानती हो बहन?

औरत : क्या?

अचला : यदि स्त्रियाँ जान जायँ कि उनका बल सच्चे श्रम में है तो हर स्त्री वही कर सकती है जो मैंने किया है।

औरत : कभी नहीं, यह हो ही नहीं सकता, और फिर इतने से समय में।

अचला : हो सकता है, और अवश्य हो सकता है। बहन यदि यहां रही तो (दोनों लड़कियों की तरफ संकेत कर) इन सबसे यही करा कर सिद्ध कर दूंगी कि हो सकता है या नहीं। बहन, स्त्री समझती है कि उसका काम केवल पत्नी

और माता के काम को पूरा कर देना है, पर इतना ही नहीं है। उसका काम अपनी जीविका उपार्जन करना भी है। उसका काम समाज में अपना स्वतंत्र स्थान बनाना भी है।

औरत : (उठते हुए) अच्छा, अभी तो चली, एक दिन सारे गाँव को इकट्ठा करूँगी, इतना ही नहीं, दूर-दूर से आदमी बुलाऊँगी और सुनना सब के सब तुम्हारे लिये क्या कहते हैं। (जाती है)

पहली लड़की : (कुछ ठहर कर, उठते हुए) मां जी, शलूका सीकर लाकर तुम्हें बताऊँगी, दैखना कैसा सिया।

अचला : हां हां, जरूर, जरूर लाना।

दूसरी लड़की : (उठते हुए) और मैं अबकी बेबीसूट लाऊँगी।

अचला : नहीं, तू सीने तो अच्छा लगी है, अब तुझे कसीदा करना सिखाऊँगी।

दूसरी लड़की : (उत्सुकता से) कसीदा ? कसीदा क्या होता है, मां जी ? कब से सिखाओगी ?

अचला : बच्चियो, पहले मैं हर चीज खुद सीखती हूँ, मैं भी तो विद्यार्थिनी ही हूँ, तब दूसरों को सिखाती हूँ। (उठ कर अलमारी में से एक टेबिलक्लाथ निकाल कर, जिसके कुछ हिस्से पर कसीदा हो चुका है।) देख यह है कसीदा। (दोनों लड़कियाँ उत्सुकता से कसीदे को देखती हैं।) अब मैंने इसे अच्छी तरह सीख लिया है। स्कूल में मैं कढ़ाई और सिलाई के सिवाय इसे भी सिखाना चाहती हूँ।

पहली लड़की : (प्रसन्नता से) जरूर. . .जरूर, मां जी उसे जरूर सिखाओ।

दूसरी लड़की : इसे तो लड़कियाँ बड़े उत्साह से सीखेंगी।

[अचला एक विचित्र प्रकार की दृष्टि से चुपचाप उस टेबिलक्लाथ को देखती रहती है। वे लड़कियां भी कुछ देर देखती रहती हैं, फिर जाती हैं।]

अचला : (टेबिलक्लाथ को देखते हुए) यह. . .यह तुम्हारे चरणों में मेरी पहली. . .पहली भेंट होगी। जिस दिन. . .जिस दिन यह भेंट करूँगी, उसी. . .उसी दिन भोजन. . .हाँ, खुद भोजन बना कर भी, टेबिल पर इसे बिछा, इस पर थाल रख, अपने हाथ का भोजन कराऊँगी। ये. . .हाँ ये सब छोटी-छोटी, बहुत छोटी छोटी चीज़े हैं, पर ये छोटी-छोटी चीजें ही तो जीवन का सबसे अधिक स्थान लिये

रहती हैं। (कुछ रुक कर आँखों में आँसू भर) कितना...कितना सुख...
कितना...कितना आनंद उस दिन मिलेगा मुझे इन सब छोटी-छोटी चीजों से ?
(फिर कुछ ठहर कर) और जब तुम...तुम यह सुनोगे कि किस तरह मैंने तुम्हारे
आदर्शों, तुम्हारे सिद्धान्तों को कार्यरूप में परिणत किया, तब...तब कितनी
खुशी...कितना संतोष होगा तुम्हें ? (फिर कुछ रुक कर) मनुष्य...मनुष्य
कदाचित् सब...हाँ, सब सब कुछ कर सकने की क्षमता रखता है। यदि वह
आरम्भ ही में, थोड़े से कष्ट से भविष्य के भीषण, हाँ भीषण परिणामों की कल्पना
कर भयभीत न हो जावे। (फिर कुछ रुक कर) तुम्हारी...तुम्हारी कृपा से
ही तो...मुझे इस अपूर्व जीवन का अनुभव हुआ। अपने हाथ की थोड़ी कमाई
पर भी निर्वाह करना कितना आनन्ददायक है ? कहाँ वह अमीरी...अस्वाभा-
विकता से भरी हुई क्रूरता से पूर्ण, दूसरों पर अवलंबित और कहाँ...कहाँ
यह गरीबी, स्वाभाविक दयामय और स्वावलंबी। कहाँ...कहाँ वह उत्तराधि-
कार का आलसी...थोथा निर्वाह; और कहाँ...कहाँ यह श्रममय...कर्मण्य
...अर्थ से भरी हुई जीविका। इसमें...इसमें अगणित...अगणित अपकार
नहीं, अपने...हाँ अपने उपकार के साथ दूसरों की सेवा भी होती है और वह...
वह (खिड़की से बाहर देखते हुए) यदि वह देहात के इस शुद्ध और इस प्रेमपूर्ण
वायुमंडल में हो, तब...तब तो...फिर...फिर तो क्या...क्या पूछना है।
(कुछ रुक कर) तुम्हारा साहित्य...तुम्हारा साहित्य भी जैसा यहाँ लिखा जावेगा
वैसा...वैसा क्या बम्बई...उस गन्दी बम्बई के उस हल्ले गुल्ले,...उस
कोलाहल में, चिमनियों से भरे उस वातावरण में लिखा जा सकता है। यहाँ...
जो कुछ लिखोगे उस पर...उस पर जिसका तुम स्वप्न देखते थे, वह...वह
नोबल प्राइज...हाँ, वह नोबल प्राइज भी मिल सकती है। (दरवाजे के नजदीक
जाकर बाहर के उद्यान को देखते हुए) इस वसन्त में ये गुलाब, ये अन्य फूल फूल
जायेंगे और इनके बीच में बैठे हुए तुम...तुम अपनी साहित्यरचना करोगे।
(कुछ रुक कर) पुष्पों...पुष्पों के बीच में बैठे हुए तुम...तुम पुष्पराज और
तुम्हारे निकट...अत्यन्त सन्निकट इधर-उधर घूम कर तुम्हारा सारा काम करती
हुई तितली,...हाँ तितली सी मैं ? (फिर कुछ रुक कर) और हमारा...
हमारा वह...इस जीवन...सारे जीवन का सुगन्ध-रूप बच्चा। (फिर कुछ

रुक कर) फिर...फिर तुम्हारी आज्ञा से पिताजी...पिताजी को भी आफ्रिका से बुला लूँगी। वे...वे भी जब यहाँ आ जीवन देखेंगे...देखेंगे उनका सरस्वती कितना तन्दुरुस्त हो गया है, कभी बीमार नहीं पड़ा, तब...तब वे सहर्ष सारी सम्पत्ति को दान कर देंगे। वह...वह सर्वस्व दान! (कुछ रुक कर) अब...अब यह अचला, तुम्हारे...तुम्हारे चरणों के योग्य हो गई। दूसरे...दूसरे भी मानने लगे। (टेबिलक्लाथ देखते हुए) बस ज्योंही...ज्योंही तुम्हारी यह प्रथम भेंट तैयार हुई, त्योंही...त्योंही मैं आई। मुझे...मुझे पार्वती सा तप नहीं करना पड़ा। वैदेही सा विलाप...विलाप नहीं करना पड़ा, और जानकी को तो फिर भी रघुनाथ जी नहीं मिले, मुझे...मुझे तो तुम सहज...सहज ही में (कुछ रुक कर) आह! यह जीवन सुख के ज्ञान के लिये कितना...कितना छोटा और दुख...दुख के अनुभव के लिये कितना लम्बा है।

[सरस्वती चन्द्र का दौड़ते हुए प्रवेश। अब वह छः वर्ष का है, परन्तु डेढ़ वर्ष में ही वह काफी अच्छा हो गया है। और शरीर में भी भर गया है। वह एक कमीज और निकर पहिने है। उसके हाथ में एक कागज है, जिस पर पेन्सिल से एक आदमी आड़ा-टेढ़ा बनाया गया है।]

सरस्वती चन्द्र : (कागज को दिखा कर) मां, मां, पिताजी ऐसे ही हैं न?

अचला : (कागज को देखकर हँसते हुए) चल, पागल कहीं का, ऐसे तेरे पिताजी, ऐसे?...वे जैसे हैं वैसा चित्र तू क्या...अच्छे से अच्छा चित्रकार भी नहीं बना सकता!

सरस्वती चन्द्र : (निराश होकर) तो फिर तुम उनको दिखाती क्यों नहीं? आफिरका से लाई तब कहती थी, दादाजी के लिये न रोऊँ, पिताजी के पास ले चलती हो। और यहाँ कोई न कोई (कुछ रुक कर) बस, दद्दू का दादा, बुद्धू का बाप, मुल्लू कीं मां, कल्लू की काकी...।

अचला : (अलमारी के पास जाकर टेबिलक्लाथ अलमारी में रखते हुए) अब जल्दी, बेटा, जल्दी तेरे पिताजी के पास चलूंगी।

सरस्वती चन्द्र : (पीछे-पीछे जाकर) पर कब...कब चलोगी

अचला : (आलमारी बन्द करते हुए) बहुत ही जल्दी।

सरस्वती चन्द्र : तुम कहती थीं बम्बई डरबन से भी अच्छा है। वहां बहुत

बड़े अच्छे-अच्छे खिलौने ले दोगी। बम्बई तो देखा नहीं। यह गाँवड़ा देखा। (एक मिट्टी के खिलौने को उठा कर पटकते हुए, जिससे वह टूट जाता है) और ये हैं खिलौने ?

अचला : (टूटे हुए खिलौने को देख कर) और यह...यह क्या किया तूने ? तूने तो, बेटा कभी इस तरह खिलौने नहीं तोड़े ?

सरस्वती चन्द्र : (आँखों में आँसू भर कर ठिनठिनाते हुए) मां, मैं तो पिताजी के पास जाऊँगा।

अचला : (सरस्वती चन्द्र के सिर पर हाथ फेरते हुए) चलेंगे बेटा, हम तुम दोनों चलेंगे।

सरस्वती चन्द्र : पर कब ? (कुछ रुक कर) जानती हो मां, स्कूल में मुझे लड़के क्या कहते थे ?

अचला : क्या ?

सरस्वती चन्द्र : तेरे पिता हैं या नहीं ?

अचला : (खिलौनों के टुकड़ों को उठाते हुए) चल, वे पगले लड़के हैं। तेरे...तेरे तो ऐसे...ऐसे अच्छे पिता हैं, बेटा जैसे दुनियाँ में किसी के भी पिता न होंगे। (खिलौने के टुकड़े खिड़की के बाहर फेंकती है)

[दरवाजे से एक आदमी का प्रवेश। आगन्तुक कुछ साँवले रंग का अधेड़ अवस्था का पुरुष है। स्वरूप और पोशाक से बम्बई का रहने वाला मालूम पड़ता है। लम्बा कोट, धोती और काली टोपी लगाये है। उसका मुख एक दम उतरा हुआ है। अचला उसे देख कर उसकी तरफ बढ़ती है। वह अचला को प्रणाम करता है। अचला प्रणाम का उत्तर देती है। दोनों जाजम पर बैठते हैं। सरस्वती चन्द्र अचला के पास खड़ा होता है।]

अचला : बेटा तूने मैनेजर साहब के हाथ नहीं जोड़े ?

(सरस्वती चन्द्र आगन्तुक को हाथ जोड़ता है। आगन्तुक उसे गोद में बैठाता है।)

अचला : कहिये मैनेजर साहब, आफ्रिका और बम्बई के समाचार तो अच्छे हैं ?

आगन्तुक : (लम्बी साँस लेकर) बम्बई में तो सब कुशल है, बाई साहब, पर आफ्रिका...(भरे हुए गले से) आफ्रिका का क्या हाल कहूँ ?..

अचला : (घबड़ा कर) क्यों? . . .क्यों पिताजी . . .पिताजी की तबियत तो अच्छी है?

[आगन्तुक कुछ न कह जेब में से एक आये हुए एल० सी० केबिलग्राम को अचला के सामने रख देता है। अचला काँपते हाथों से केबिल को उठाती है।]

अचला : (अत्यन्त शीघ्रता से केबिल पढ़ते हुए) हाय! हाय! पिताजी!

[केबिल अचला के हाथ से गिर पड़ता है। वह फूट फूट कर रो पड़ती है। सरस्वती चन्द्र जिसके चेहरे से मालूम पड़ता है कि वह कुछ भी नहीं समझा, आगन्तुक की गोद से उठकर अचला के गले से लिपट जाता है। कुछ समझ न आने पर भी वह अचला को रोते देख रोने लगता है। आगन्तुक कुछ देर तक नहीं बोलता।]

आगन्तुक : (गला साफ करते हुए) आपको धीरज . . .धीरज रखना चाहिये, बाई साहब। (कुछ रुक कर) देखिये, देखिये बच्चे की क्या हालत हो रही है। (फिर कुछ रुक कर) एकाएक ऐसा केबिल पाकर मुझे तो पहले विश्वास नहीं हुआ, मैंने जवाबी केबिलग्राम सालीसिटर को दिया। जब उसका जवाब आया तब मैं आपके पास आया। (एक वैसा ही दूसरा केबिलग्राम जेब से निकाल अचला के सामने रखता है।)

अचला : (हिचकियाँ लेते हुए. एक हाथ सरस्वती चन्द्र के सिर पर फेरते तथा दूसरे हाथ से दूसरा केबिल पढ़ते हुए) हार्ट . . .हार्ट फेल हुआ. मैनेजर साहब मैं . . . मैं जो इतना बड़ा धक्का पहुँचा कर आई थी। (फिर जोर से रोते हुए) उनका कोमल हृदय उसे बर्दाश्त न कर सका। कैसी . . .अभागिन हूँ मैं? आखिर वक्त . . . उनकी सेवा . . .सेवा . . .तक न कर सकी . . .उनके दर्शन से भी वंचित रह गई।

[कुछ देर आगन्तुक कुछ नहीं बोलता, पर सरस्वती चन्द्र को उठा कर कुछ देर उसके सिर पर हाथ फेरता रहता है। सरस्वती चन्द्र चुप हो जाता है। कुछ और रो चुकने पर अचला थोड़ी शान्त होती है।]

आगन्तुक : (अचला को कुछ शान्त होते देख) अब . . .अब तो, बाईसाहब, आपको पत्थर हृदय पर रख आगे का सब इन्तजाम करना होगा। कितना बड़ा कार है। (एक तीसरा केबिलग्राम जेब से निकाल उसे अचला के सामने रखते हुए) यह सालीसिटर का दूसरा केबिल है। वे वसीयत के द्वारा, अपनी कुल जायदाद आपको दे गये हैं।

[अचला कुछ देर और शान्त हो तीसरा केबिल पढ़ती है। और कुछ देर सोचती रहती है। आगन्तुक और सरस्वती चन्द्र अचला की तरफ देखते हैं। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

अचला : (एकाएक) मैनेजर साहब, सारी सम्पत्ति, पिता जी के नाम पर ही दान में दी जायगी।

आगन्तुक : (अत्यधिक आश्चर्य से) क्या, क्या कहा बाई साहब?

अचला : मैंने यह कहा, सारी सम्पत्ति पिताजी के नाम पर ही दान में दी जायगी।

अगन्तुक : (और भी आश्चर्य से) सर्वस्व दान!

अचला : हां सर्वस्व दान, मैनेजर साहब, उन...उन हिन्दुस्थानियों के लिये जिनके कुटुम्बियों ने, आफ्रिका जाकर अपने खून से वहां की जमीन सींच उसे सरसब्ज देश बनाया है।

[आगन्तुक अवाक् हो अचला की तरफ देखता है। सरस्वती चन्द्र उसकी गोद से उठ फिर अचला की गोद में बैठता है। अचला सरस्वती चन्द्र को देख उसके सिर पर हाथ फेरने लगती है। आँखों में फिर असू भर आँते हैं।]

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान : बम्बई की उसी होटल की कोठरी जो चौथे अंक के दूसरे दृश्य में थी।

समय : प्रातःकाल।

[कोठरी की हालत चौथे अंक की अपेक्षा भी खराब हो गई है। विद्याभूषण अपने पलंग पर लेटा हुआ है। हजामत बढ़ गई है, अतः उसकी उम्र और अधिक दिखती है। उसके बाँये हाथ में कई बिलों के कागज हैं, और दाहिने हाथ में फाउ-न्टेनपेन। वह इन कागजों को देख रहा है। पास की टेबिल पर शराब की बोतल और गिलास रखा है। उसका सामान और भी खराब हो गया है।]

विद्याभूषण : (कुछ देर चुप रहने के बाद) तो...तो अपने लेखों..., कहानियों,...नाटकों...उपन्यासों की जगह, इन बिलों का बार-बार रिविजन ही अब मेरा काम रह गया है। (कुछ ठहर कर बिलों को उलटते हुए) होटल का

बिल. . .टुबैकोनिस्ट का बिल, . . .वाइन मर्चेन्ट का बिल,. . .डाक्टर का बिल, कैमिस्ट का बिल , । . . .और सब . . .सब एक से एक बड़े . . .एक से एक विशाल . . .एक से एक विकराल। बुढ़ापे में गरीबी शायद विशेष कष्टदायक नहीं होती, पर जवानी . . .जवानी में जब इतने . . .इतने बड़े-बड़े हौसले, इतनी . . .इतनी बड़ी-बड़ी अभिलाषाएँ, इच्छाएँ रहती हैं, तब . . .तब यह गरीबी। आह! (फाउन्टेनपेन को घुमाते हुए) तेरा. .तेरा काम है इन बिलों. . .बिलों के टोटल करना, जोड़. . .जोड़ लगाना। कहां. . .कहां गई तेरी. . .तेरी वह सरपट चाल. . .तेरी वह सरपट दौड़, वह. . .वह भी खत्म हो गई। शायद. . .श।यद वह उन साँसों के सदृश थी जो जीवन. . .जीवन समाप्त होने के पहले. . .एक बार. . .एक बार तेजी से . . .बड़ी तेजी से दौड़ लगाती है। (कुछ रुक कर) वह. . .वह चाल पैदा. . .पैदा ही हुई थी दुनियाँ के मनुष्य रूपी भिन्न-भिन्न रोगों के कीड़ों . . .हाँ कीड़ों के कारण और उन्हीं. . .उन्हीं ने उसे खत्म. . . खत्म भी कर दिया। (फिर कुछ रुक कर) यह दुनियाँ. . .दुनियाँ में रहने वाले ये आदमी और ये पुरुष. . .पुरुष बदमाश हैं और स्त्रियाँ. . .स्त्रियाँ बेवकूफ़। इसी एक, हां इसी एक वाक्य में सारा विश्व आ जाता है। (कुछ रुक कर) नहीं, नहीं, यह दुनियाँ. . .दुनियाँ है रोगों का घर, और ये आदमी और ये. . .ये औरतें हैं उन रोगों के कीड़े। यहां सब कुछ सड़ रहा है, सड़। शेक्सपीयर ठीक कहता है। "And so from hour to hour we ripe and ripe and from hour to hour we rot and rot." (कुछ रुक कर) पर. . .पर कोई-कोई. . .कोई-कोई देवता. . .देवता भी यहां आ जाता है। लेकिन. . .लेकिन वह तभी. . .तभी जिन्दा रह सकता है. . . जब इन अगणित कीड़ों को पददलित कर. . .इन्हें कुचल कर जीवन पथ पर चले। अगणित. . .अगणित के सिरों के सोपान. . .सोपान बना कर उसके द्वारा ऊपर . . .ऊपर चढ़े। (एकाएक खड़े, हो बिलों के कागजों को टेबिल पर पटककर, जोर-जोर से पैरों को जमीन पर पटकते हुए) इस तरह. . .इस प्रकार . . .तभी . . .तभी मनुष्य सुखी हो सकता है। प्रेम सेवा, ये सुख की गारन्टी, हां गारन्टी नहीं। (कुछ रुक कर पतलून के जेब से सिगरेट केस निकाल कर सिगरेट जलाते हुए) मेरे सारे आदर्शों. . .सारे सिद्धान्तों में आग. . .आग लग गई।

लगनी...लगना ही चाहिये थी। कैसी मूर्खता से...बेवकूफी से भरे हुए थे वे? (जोर का कश खींच इधर-उधर घूमते हुए) अगणित के आँसू, अगणित का पसीना, अगणित का खून। (धुआँ छोड़ते हुए खड़े हो, बोतल में से शराब गिलास में डालते हुए) अरे वे आँसू...वे आँसू तो गिरना ही चाहिए। वह पसीना...वह पसीना तो बहना ही चाहिये। वह खून...(शराब पी कर) वह खून तो पिया ही जाना चाहिये। बिना इसके...बिना इसके कहीं उच्च स्थान ...कहीं उच्च पद...कहीं सिंहासन (कुर्सी पर बैठ) बैठने...बैठने को मिल सकता है? (कुछ रुक कर एक कश खींच) बिना इसके...बिना इसके तो इधर से उधर और उधर से इधर (धुआँ छोड़ते हुए) उड़ना और विलीन होना... उड़ना और विलीन होना ही है। कई...कई बार इस चीनी कहावत के अनुसार कि—"Unjustly got wealth is like snow sprinkled with hot water." यह...यह मन में उठता था। सोचता था लक्ष्मीदास की वसुधा स्थिर, हां स्थिर रहने वाली नहीं, पर कैसी...कैसी स्थिर है वह। दीपावली के दिन वह उससे कहता होगा—"स्थिराभव, स्थिराभव, स्थिराभव" और वह... वह बराबर उसकी प्रार्थना मान रही है। लक्ष्मीदास...लक्ष्मीदास तुमने...तुमने बुद्धिमानी...दूरदर्शिता की। (शराब पीकर जल्दी-जल्दी) अगणित का खून किये बिना तुम लाल कैसे हो सकते थे? बिना इसके ऐसी प्रतिष्ठा तुम्हारी कैसी हो सकती थी? (धीरे-धीरे सामने की ओर देख) वे महल...वे वैभव...वे विलास कहां से आ सकते थे। (कुछ ठहर कर लंबी साँस ले) अगणित...अगणित का खून पीने वाले तुम सुखी हो और मैं दुखी...तथा...तथा चिन्ताग्रस्त। ..न भूख है...न नींद है, न सुख...है, न शान्ति। दुःख...केवल दुःख में मनुष्य शायद खा सकता है,...सो तो सकता ही है, पर...पर चिन्ताग्रस्त को नींद... नींद भी नहीं। (कुछ रुक कर) आह!...मैं..मैं अपने स्वयं के टुकड़े, हां टुकड़े हूँ। अपना...अपना ही टूटा-फूटा भग्नावशेष...खँडहर, हां हां, खँडहर हूँ। न मैं किसी का हूँ और न कोई...कोई मेरा। संसार में सिवा रुपये...सिवा रुपये के कौन किसका है? अरे जब अपनी औरत ही अपनी नहीं, तब दूसरे की तो बात ही निरर्थक...थोथी बात है। (सिगरेट का एक कश खींच) अचला... अचला अब तो तेरा...तेरा भी खून...खून खींचने की इच्छा होती है। ऐसी ही

औरतों के लिए जापान वाले कहते हैं "All married women are not wives. (धुआँ छोड़ते हुए) और वह लड़का... वह लड़का ? (कुछ रुक कर) उसके पर्ज़ैशन... पज़ैशन के लिए नालिश करूँ ? (फिर कुछ रुक कर) पर... पर कहाँ से आयगा मुकदमे... हाँ मुकदमे के लिए खर्च ? (फिर कुछ रुक कर) और... और पज़ैशन मिल भी गया तो कहां से... कहां से आयगा रुपया उसके पालन-पोषण के वास्ते ? (सिगरेट टेबिल पर रख दोनों हाथों पर सिर रख देता है और कुछ देर चुप रहता है। फिर एकाएक सिर उठा कर बिलों को देखते हुए) अपना... अपना खर्च ही नहीं चलता। ये... ये ही चुकेंगे कैसे इस बार ? (कुछ रुक कर)... वेग, बारो ऑर स्टील। (फिर कुछ रुक कर) बीच की बात तो न जाने कितने बार की, अब कोई कर्ज नहीं देता। चोरी करने की क्षमता नहीं, और भीख... भीख माँगने की अभी... अभी भी इच्छा नहीं होती। (कुछ रुक कर एकाएक टहलते हुए) एक केबिल... एक छोटे से केबिल की जरूरत है। "दाता, एक पैसा... एक पैसा" कहने की नहीं। (कुछ रुक कर) अमीरी... अमीरी ही प्यार की चीज है। गरीबी... गरीबी तो घृणा की वस्तु है और फिर अमीरी कहीं उत्तराधिकार में मिल जाय... बिना... बिना श्रम के ? (एकाएक खड़े हो हाथ से छाती दाबते हुए) यह... यह क्या फिर हार्ट अटैक होगा (जल्दी से बिस्तर पर लेट कुछ देर चुप रहने के बाद, पतलून की जेब से दवा की एक शीशी निकाल उसमें से एक गोली निकाल कर खाते हुए) डाक्टर कहता है 'कम्प्लीट रैस्ट'। (कुछ रुक कर) पर .... पर वह मिले कैसे ? दो... दो ही रास्ते हैं... आत्महत्या या आत्म-समर्पण। (कुछ रुक कर) पर... पर आत्महत्या के बाद का आराम—वह आराम क्या, सब कुछ का खात्मा है और... और आत्मसमर्पण... आत्मसमर्पण के पश्चात् ?... उसके... उसके बाद तो अभी... अभी भी सब कुछ हो सकता है। स्कालर-शिप के समय भी तो आत्मसमर्पण ही किया था। तभी... तभी तो विद्वान् बन सका। इस... इस बार के आत्मसमर्पण से तो धनवान भी बन जाऊँगा। और कलाकार... कलाकार होने के लिए भी तो आराम चाहिए, जो धन... धन से मिल सकता है। आराम... आराम करते हुए ही कलाकार किसी महान... महान कृति की कल्पना कर सकता है, पर... पर... फिर... सिर... सिर जो झुकता है... पर... पर... फिर एक ..., एक ही जन्म... एक ही जीवन... एक ही मरण जो है। कभी-कभी अपमानों

...हां अपमानों का जीवन रहने की कीमत के स्वरूप में सहना पड़ता है। (कुछ रुक कर) और मैंने अभी समय...समय ही कितना खोया है? चार छै, हां, चार छै ही वर्ष तो। (फिर रुक कर) यदि मनुष्य बिलकुल ही बच्चा या बहुत ही बूढ़ा नहीं तो जीवन में चार छै...हां चार छै वर्ष अधिक नहीं। (कुछ रुक कर) कैसी...कैसी मानसिक स्थिति हो गई है? मन... मन ऐसे स्थान पर पहुँच गया है जहां वह कुछ देर...हां कुछ देर भी, ठहर कर भी कुछ सोच नहीं सकता। (कुछ देर चुप रह) एक केबिल...सिर्फ एक छोटे से केबिल की जरूरत है (फिर कुछ रुक कर) इतना ही लिख दूं तो... "सफ़रिंग फ्राम हार्ट ट्रबल, कम इमीजियेटली" (फिर कुछ रुक कर) इससे कहां सिर झुका? (फिर कुछ रुक कर) वह आयगी? और आयगी तो फिर...फिर तो जिस तरह...हां सरस्वती की बीमारी के लिए रुपया मँगाया था उसी...उसी तरह खुद ही मेरे लिए मँगायेगी। लक्ष्मीदास के सामने मेरे सिर झुकाने का प्रश्न...सवाल ही कहां उठता है? (कुछ ठहर कर छाती दाबते हुए) रुक गया...रुक गया...तो फिर चलूं...चलूं टेलीग्राफ़ आफिस...(उठते हुए) नहीं तो कहीं फिर...फिर मन न बदल जाय। कहीं देर... बहुत देर न हो जाय।

[विद्याभूषण खड़े हो शराब का गिलास खाली कर कोट पहन, और हाथ में टोप उठा जैसे ही दरवाजे की तरफ बढ़ता है वैसे ही नेपथ्य में शब्द होता है "आफ्रिका के धनकुबेर की लड़की का महान त्याग। करोड़ों की सम्पत्ति का सर्वस्व दान।" विद्याभूषण ठिठक कर खड़ा सा रह जाता है। फिर उपर्युक्त शब्द सुन पड़ते हैं।]

विद्याभूषण : (घबराहट से) अचला...अचला ने तो यह नहीं किया है? कहीं ऐसा...ऐसा अनर्थ!

[फिर से यही शब्द आते हैं।]

विद्याभूषण : देखूँ...देखूं पेपर लेकर, (दरवाजे की तरफ जाते हुए) पहले देखूँ...।

[विद्याभूषण जल्दी से दरवाजा खोल बाहर जाता है, और कुछ ही सेकेण्ड में एक अखबार लेकर उसे पढ़ते ही लौटता है। दरवाजा बन्द कर वह कुर्सी पर बैठता और अखबार पढ़ता है। वह कितनी शीघ्रता से पढ़ रहा है, यह उसकी पुतलियों से जान पड़ता है; उसका हृदय हर सेकेण्ड कैसा बैठता सा जा रहा है यह उसके मुख से।]

विद्याभूषण : (सिर उठा कर सामने देखते हुए लम्बी साँस लेकर) अचला! अचला! तूने मेरी जिन्दगी बर्बाद की और आखिर...आखिर उस...उस लड़के...लड़के की भी। (फिर अखबार को देखते हुए) मैं बोर्ड ऑव् ट्रस्टीज... बोर्ड ऑव् ट्रस्टीज का प्रेसीडेन्ट। (कुछ रुक कर सामने की ओर देखते हुए) हां, मेरे...मेरे ही आदर्श मेरे...मेरे ही सिद्धान्त जो कार्यरूप में परिणत किये जा रहे हैं। (जोर का कहकहा लगा) मेरे आदर्श ! मेरे सिद्धान्त ! ओह ! मूर्खता...वे...वे बेवकूफी से भरे हुए आदर्श...सिद्धान्त। हमारे सारे आदर्शों, सारे सिद्धान्तों में जीवन यह कैसा परिवर्तन करता है ? पर...पर...यह अनुभव, ...अनुभव के बाद जो आदर्श...जो सिद्धान्त सत्य...हाँ, सत्य सिद्ध हों वही... वही ठीक आदर्श...वही ठीक सिद्धान्त हैं। (कुछ रुक कर) अचला मुझे...मुझे अपने पुराने आदर्शों और सिद्धान्तों पर जरा भी श्रद्धा...थोड़ा भी विश्वास नहीं रह गया है। (फिर अखबार देखते हुए) पौने दो बरस...हाँ पौने दो बरस के करीब से यह हिन्दुस्थान में रह रही है, और यह...यह है उसका पता। (कुछ ठहर कर) जब यहीं...यहीं थी, देवी...और बाप मर गया था तो यह सब...यह सब करने के पहले मुझ...मुझ से भी तो पूछ लेती ? (कुछ रुक कर सिगरेट जलाते हुए) हाँ, जाना... (माचिस बुझ जाती है इसलिए फिर जला कर) जाना... (फिर बुझ जाती है अत: फिर जला कर) जाना होगा। वहाँ देखना...देखना होगा कि अभी...अभी भी क्या...क्या किया जा सकता है ? (कुछ रुक कर एक कश खींच कर) उस ट्रस्ट को किसी तरह इललीगल...गैरकानूनी करार दिया...करार दिया जा सकता...।

[धुआँ उड़ाते हुए विद्याभूषण सामने की ओर शून्य दृष्टि से देखता है।]

लघु यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान : गाँव में अचला के मकान का वही कोठा जो इस अंक के पहले दृश्य में था।

समय : सन्ध्या।

[दृश्य वैसा है, जैसा इस अंक के पहले दृश्य में था। अचला आलमारी के पास

बैठी हुई अपनी ट्रंक में यात्रा का सामान जमा रही है। सरस्वती चन्द्र अपनी ट्रंक में अपने खिलौने रख रहा है। एक दो अखबार इधर-उधर पड़े हुए हैं।]

सरस्वती चन्द्र : तो यशोधरा देवी से मिलने और राहुल को देखने बुद्धदेव अपने घर आये थे, यशोधरा और राहुल नहीं गये थे ?

अचला : हां बेटा, और मेरा विश्वास था कि अखबार में मेरा पता पढ़ने पर तेरे पिता जी यहां आयेंगे।

सरस्वती चन्द्र : (कुछ देर सोच कर) पर अच्छा हुआ वे नहीं आये। मां, वे आ जाते तो मैं बम्बई कैसे देख पाता ?

अचला : (सरस्वती चन्द्र की बात पर ध्यान न देकर टेबिल-क्लाथ जो अब पूरा हो गया है, खोल कर देख फिर उसकी घड़ी करते हुए अपनी ही धुन में) पर नहीं, बेटा, मैं ही गल्ती कर रही हूँ। बुद्धदेव यशोधरा देवी और राहुल को छोड़ कर गये थे, उन्हें आना ही चाहिए था। यहाँ. . .यहाँ तो, बेटा, मैं तेरे पिता को छोड़ कर आफ्रिका गई थी। इसलिए मेरा ही उनके पास जाना उचित है। (कुछ रुक कर टेबिलक्लाथ पेटी में रखते हुए) अपराध मैंने किया है, बेटा, व्रत मैंने किया था बेटा, प्रायश्चित्त हो गया, सिद्धि मिल गई, अब इष्ट के दर्शन तो मुझे ही करना चाहिए।

सरस्वती चन्द्र : (ध्यान से मां की बात सुनने के बाद पूरी न समझने के कारण) क्या बिरत, पराहचित, सिद्धि, इषट. . . .ये सब क्या हुआ, मां ?

[उसी औरत का जल्दी-जल्दी प्रवेश जो इस अंक के पहले दृश्य में आई थी।]

औरत : (नजदीक आते हुए) बहन, मैं तुम्हें कहने आई हूँ कि इसटेसन तुम मेरे आये बिना न जाना।

अचला : क्यों, बहन ?

औरत : (खड़े खड़े ही) पहले वचन हारो तब बताऊँगी।

अचला : (मुस्करा कर) इतनी बड़ी बात है कि वचन देना चाहिए ?

औरत : (जल्दी से) देर न करो, बहन नहीं तो फिर मैं नहीं जानती, गाड़ी चूक जायगी।

अचला : (हँसते हुए) अच्छा. . .अच्छा दिया वचन, अब ?

औरत : (और जल्दी से) अरे ! तुम बचन हारना भी नहीं जानती ? इस

तरह कहो? "अचला सुखदा को वचन हारती है कि जब तक सुखदा अचला के घर न आ जायगी तब तक अचला इसटेसन न जायगी।"

अचला : (हँसते हुए) तुमने देर कर दी और गाड़ी...गाड़ी चूक गई तो?

औरत : (भुंझला कर) देरी तो तुम कर रही हो?...

अचला : (बीच ही में) अच्छा लो भई। (हँसते हुए) अचला सुखदा को वचन हारती है कि जब तक वह उसके घर नहीं आ जायेगी तब तक वह स्टेशन नहीं जायगी। अब बताओ कारण?

औरत : तुमने वचन ही ठीक नहीं हारा, उसके घर क्या, कौन किसके घर?

अचला : (हँसते हुए) अच्छा, अच्छा, फिर लो, (धीरे-धीरे) अचला सुखदा को वचन हारती है कि जब तक सुखदा अचला के घर न आ जायगी तब तक अचला स्टेशन नहीं जायगी। (कुछ रुक कर) अब तो ठीक हो गया न?

औरत : हाँ, अब ठीक हुआ।

अचला : तो अब तो कारण बताओ?

औरत : कारण यह है कि सारा गांव गाजे-बाजे के साथ यहां आ रहा है। तुम्हारा जुलूस इसटेसन ले चलेगा। (जल्दी से जाने को दरवाजे की ओर बढ़ती है।)

अचला : (उठ कर पीछे-पीछे जाते हुए) बहन...बहन...यह क्या...यह क्या है? मुझ पर इतना...इतना बोझ न लादो कि मैं...

औरत : (बीच ही में रुक कर) बोझ! बोझ! कैसी बात करती हो बहन; तुम्हारा इस गाँव पर, और इस गाँव पर क्या, अब तो ऐसा दान दे कर देस पर ऐसा बोझ है कि कभी यह गाँव और देस तुमसे उऋण नहीं हो सकता। हम अपना प्रेम भी परगट न करें?

अचला : यही करना है तो जब उनके...उनके साथ लौटें तब?

औरत : हां, जब कुँअर जी के साथ आओगी उस वखत भी यही होगा। धूमधाम से तुम्हारी बिदा होगी गौर धूमधाम से अगवानी भी। (जल्दी से प्रस्थान)

सरस्वती चन्द्र : (नाचते हुए) बाजा बजेगा; जलूस निकलेगा, आहा! आहा!

अचला : (लौट कर सरस्वती चन्द्र की सन्दूक देखते हुए) यह तूने सब के सब खिलौने पेटी में क्यों भरे हैं?

सरस्वती चन्द्र : पिता जी को दिखाऊँगा न,मां ? छोड़ूँ कैसे ? राम, लक्ष्मण सीता को छोड़ दूं ? राधा किसन को छोड़ दूं ? शिव पारवती को...बुद्धदेव को... किसे... किसे छोड़ दूं ? शेर, हाथी, घोड़ा, गाय, किसे बता किसे...छोड़ूँ ?

अचला : पर बेटा, हम तो उन्हें लेने जा रहे हैं। वे यहीं आवेंगे, यहीं तू उन्हें सब बता...

[नेपथ्य में "अचला, अचला" शब्द होता है।]

अचला : (चौंक कर) हैं! उनका... उनका शब्द...(झपट कर दरवाजे की ओर बढ़ती है)

[विद्याभूषण का प्रवेश, अचला रोती हुई उससे लिपट जाती है। विद्याभूषण उसकी पीठ पर हाथ फेरता है। उसकी आँखों से भी आँसू बह निकलते हैं। सरस्वती चन्द्र खड़े हो चुपचाप पिता की ओर देखता है, पर कुछ बोलता नहीं। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

अचला : (एकाएक अलग से सरस्वती चन्द्र के निकट जा गद्गद स्वर से) बेटा! बेटा! तेरे पिताजी यहीं... यहीं आ गये, यहीं पधार आये, हमें बम्बई नहीं जाना पड़ा। पैर पड़... पैर पड़ उनके।

[सरस्वती चन्द्र आगे नहीं बढ़ता। विद्याभूषण झपट कर उसे गोद में उठा लेता है और उसके गालों के कई चूमे लेता है। अब सरस्वती चन्द्र अपने दोनों हाथ विद्याभूषण के गले में डाल उससे लिपट जाता है। अचला एकटक पिता पुत्र का यह मिलन देखती है। उसकी आँखों के आँसू नहीं रुकते।]

अचला : (कुछ देर एकटक विद्याभूषण की ओर देखते हुए) कैसे...कैसे हो गये हैं आप ?

विद्याभूषण : (अचला की तरफ देखते हुए) और तुम...तुम भी कैसी हो गई हो, अचला ? (कुछ रुक कर)...मेरी... बहुत याद की क्या ? पर... पर पौने दो साल से हो कर भी, मिलने तक न आई... सूचना तक न...

अचला : आपके योग्य बन रही थी, बिना आपके योग्य बने कैसे मुँह दिखाती ? आज आ रही थी। (सामान की ओर संकेत कर) देखिये यह सामान बँध रहा था कि आप पधार आये। (कुछ रुक कर) अब... अब यह अचला शायद आपके योग्य हो गई है... यह...

विद्याभूषण : (बीच ही में) सरस्वती...सरस्वती भी कभी मुझे पूछता था ?

सरस्वती चन्द्र : मैं...मैं ? पिताजी, मैं तो क्या कहूँ आपसे...

विद्याभूषण : (एकाएक सरस्वती चन्द्र को गोद से उतारते हुए दोनों हाथों से अपनी छाती दबाते हुए बैठ कर) आह ! आह !

अचला : (घबड़ा कर नजदीक आ) क्यों...क्यों क्या हुआ ?

विद्याभूषण : (जेब से दवा की शीशी निकालते हुए) कुछ नहीं...कुछ नहीं, अचला, हार्ट ट्रबल हो गई है। (दवा की एक गोली खाते हुए) अभी...अभी ठीक हो जाऊँगा।

अचला : (अत्यन्त घबड़ा कर) हार्ट ट्रबल, हार्ट ट्रबल ! ओह ! यह क्या... यह क्या हो गया ? (कुछ रुक कर) यहाँ एक अच्छे वैद्य हैं, उन्हें बुलाऊँ ?

विद्याभूषण : नहीं...नहीं, इन देहाती वैद्यों-ऐद्यों से कुछ न होगा। इस दवा से मुझे हमेशा फायदा होता है। (कुछ रुक कर) मुझे लेटना होगा।

अचला : (भर्राये हुए स्वर से) हां, हां, पलंग पर लेटिये।

(**विद्याभूषण** उठता है। अचला सहारा देती है। वह पलंग की तरफ बढ़ता है। सरस्वती चन्द्र जो एक दम से सहम सा गया है, धीरे-धीरे पीछे-पीछे जाता है। **विद्याभूषण** पलंग पर लेटता है। अचला नीचे अत्यन्त निकट बैठती है। सरस्वती चन्द्र कुछ दूर पर खड़ा रहता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

विद्याभूषण : (एकाएक फिर छाती दाबते हुए) आह ! आह ! आज...आज तो यह रुक...रुक ही नहीं रहा है।

अचला : (एकदम घबड़ा कर खड़े हो) फिर...फिर क्या ...क्या करूँ ?

विद्याभूषण : (दो गोली निकालते हुए) कुछ नहीं...कुछ नहीं, डबल डोज...डबल डोज लेता हूँ। (दो गोलियाँ खा कर) अभी..अभी रुक जायगा।

[अचला जिसके मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगती हैं, उसी तरह भौंचक्की सी खड़ी रहती हैं। और सरस्वती चन्द्र एकटक पिता की ओर देखते हुए अपनी जगह खड़ा रहता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

विद्याभूषण : (फिर छाती दाबते हुए) देखो...देखो, अचला नजदीक बैठो, एक बात...एक बड़ी जरूरी बात कह देता हूँ, क्योंकि शायद...

अचला : (आँसू बहाती हुई नजदीक बैठ, विद्याभूषण की छाती पर हाथ

फेरते हुए बीच ही में) खबरदार अगर कोई अशुभ बात मुंह से निकली...

विद्याभूषण : अच्छा, मेरी वह... वह जरूरी बात तो सुन लो। तुमने... तुमने इस सम्पत्ति का सर्वस्व दान कर बहुत बड़ी... जीवन की सबसे बड़ी गल्ती की है।

अचला : (अत्यन्त आश्चर्य से) गल्ती की है? आपके... आपके आदर्शों और सिद्धान्तों के अनुसार ही...

विद्याभूषण : (बीच ही में) वे सारे आदर्श और सिद्धान्त गलत थे।

अचला : (और भी आश्चर्य से) गलत थे?... कभी नहीं। मैंने उनके अनुसार जीवन बिता कर अनुभव किया है कि वे ठीक... बिलकुल ठीक हैं।

विद्याभूषण : (छाती पर जल्दी-जल्दी हाथ फेरते हुए) और मैंने... मैंने भी अनुभव किया है, अचला, कि वे गलत... बिलकुल गलत थे। (कुछ रुक कर) देखो, इस दान... इस दान के कारण सरस्वती... सरस्वती का जीवन भी बरबाद होगा।... मैं... मैं अच्छा हो गया तो मैं... नहीं तो तुम... तुम कानूनी रायें लेकर उस ट्रस्ट... उस ट्रस्ट डीड को किसी... किसी भी तरह गैर... गैर-कानूनी... (छाती पकड़ कठिनाई से साँस लेते हुए) ओह! ओह! ... मृत्यु... मृत्यु कदाचित्... कितना भया... भयानक नहीं... पर... पर... न... न जीवन... कित... कितना भया... भयानक... और... और... वह... वह यदि ऐ!.. ऐसे ... समय हो जब... जब पीछे ... पीछे रहे आत्मी... आत्मीयों का सुख... सुख निश्चित... निश्चित न हो... उस... उस दिन के कार्य अधू... अधूरे हों, ओ... ओह!... ओह... यदि... यदि कहीं भगवान हों तो हे... हे... भगवान... सर-स्वती... सरस्वती चन्द्र का जीवन...

[विद्याभूषण छटपटा कर अचला की गोद में गिर कर मरता है। अचला उससे लिपट चिल्ला कर रोती है। उसी समय नेपथ्य में बाजे की आवाज सुन पड़ती है, जो नजदीक आ रही है। सरस्वती चन्द्र खड़ा खड़ा ही कभी मरे हुए पिता तथा चिल्लाती हुई मां की ओर, और कभी दरवाजे की तरफ देखता है तथा धीरे-धीरे दरवाजे की ओर बढ़ता है। बाजे की ध्वनि और अचला का चीत्कार मिल से जाते हैं।]

यवनिका

उपसंहार

स्थान : गाँव में अचला के मकान का वही कोठा जो पाँचवें अंक के पहिले और तीसरे दृश्य में था।

समय : प्रातःकाल।

[पाँचवें अंक के अन्तिम दृश्य की घटना, बारह वर्षों का एक युग बीत चुका है। कोठा यद्यपि उतना ही बड़ा, तथा वैसा ही साफ सुथरा है, तथापि उसमें कई परिवर्तन हो गए हैं। बाँई तरफ की दीवाल के नजदीक अब पलंग नहीं है। बाँई दीवाल में भी अब दाहिनी ओर की दीवाल के सदृश दरवाजा बन गया है, जो एक दूसरे कोठे में खुलता है। इस कोठे का जो भाग दिखाई देता है उसमें एक तरफ एक पलंग का कुछ हिस्सा और दूसरी तरफ पूजा का बहुत सा सामान दिख पड़ता है। पूजा के सामान में एक पटे पर विद्याभूषण का एक चित्र और चित्र के सामने बालकृष्ण की एक मूर्ति के दर्शन होते हैं। चित्र और मूर्ति पर पुष्पमालाएँ चढ़ी हुई हैं। पीछे के दीवाल में खिड़की की जगह भी एक दरवाजा है और यह दरवाजा भी अब एक दूसरे कोठे में खुलता है। इस कोठे का जो भाग दिखाई दता है, उसमें एक तरफ एक पलंग का कुछ हिस्सा और दूसरी ओर एक तखत पर कुछ किताबें तथा लिखने पढ़ने का सामान दिख पड़ता है। अर्थात् इस दृश्य में हमें एक की जगह तीन कोठे दिखाई देते हैं। लेकिन पूरा कोठा पहले वाला ही दिखता है। दाहिनी तरफ की दीवाल के दरवाजे से बाहर के बगीचे का हिस्सा उसी प्रकार दिख पड़ता है जैसा पहले दिखाई देता था। लेकिन बगीचे के पौधे अब बहुत बड़े-बड़े हो गये हैं तथा फूले हुए हैं। चमेली की एक छोटी सी गुन्ज का भी कुछ हिस्सा दिख पड़ता है। दूर पर आम के दरख्तों की पंक्ति दिखाई देती है और ये आम के वृक्ष मौरे हुए हैं। पीछे की दीवाल में अब दरवाजे के आस-पास कुछ दूर का हिस्सा छोड़ कर दो खिड़कियाँ खुद गई हैं। इनसे बाहर का जो भाग दिखाई देता है उसमें नजदीक की जमीन अब पड़ती नहीं, पर बोई हुई है।

इसकी फसल पकने के करीब है। इस जमीन के एक तरफ खलिहान का कुछ भाग दिखाई देता है, जिसमें एक कुँआ, कुछ बैल और गायें भी दिख पड़ती हैं। खलिहान अभी खाली है। दूर पर गांव के झोपड़े, और उनके बाद पहाड़ी श्रेणियां हैं ही, पर इन श्रेणियों पर के पलाश के वृक्ष फूल कर अब केसरी रंग के हो गये हैं। मौरे हुए आमों और फूले हुए पलाशों से बसन्त ऋतु जान पड़ती है। इसे और भी सिद्ध कर रही है बीच-बीच में बोलती हुई कोयल। कोठे की सजावट में भी फर्क पड़ गया है। पीछे की दीवार में बीच के दरवाजे के आसपास दो बड़े-बड़े तैल चित्र लगे हैं। एक विद्याभूषण का तथा दूसरा महात्मा गांधी का। इन तैलचित्रों के नीचे हिन्दी में 'सरस्वती चन्द्र' लिखा हुआ है, जिससे जान पड़ता है कि ये सरस्वती चन्द्र के बनाये हैं। दोनों चित्रों पर पुष्पहार चढ़े हुए हैं और उनके नीचे दीवार से सटी हुई एक एक टेबिल रखी है। इसमें से विद्याभूषण के चित्र की टेबिल पर अचला का बनाया हुआ वही टबिलक्लाथ बिछा है, जो पाँचवें अंक के पहले दृश्य में अधूरा था और तीसर में पूरा हो गया था। महात्मा गांधी के चित्र के नीचे की टेबिल पर भी वैसा ही एक टेबिलक्लाथ बिछा है। पर इसकी बनावट दूसरी तरह की है। दोनों टेबिलों पर एक-एक बस्ता बँधा रखा हुआ है। इन बस्तों पर कागज के चिट चिपके हैं। विद्याभूषण की टेबिल के बस्ते के चिट पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है—श्री विद्या-भूषण के हस्तलिखित ग्रन्थ, गांधी जी की टेबिल के बस्ते के चिट पर लिखा है—महात्मा गांधी का आत्मचरित तथा अन्य ग्रन्थ। दीवालों पर कई ऑयल तथा वॉटर पेन्टिंग टँगे हैं। सब के नीचे सरस्वती चन्द्र लिखा हुआ है। ये इसी गाँव के प्राकृतिक दृश्यों तथा ग्राम्य जीवन से सम्बन्ध रखने वाले हैं। कोठे की छत की चाँदनी अब सफेद खादी की है और इसके चारों तरफ की झालर में राष्ट्रीय तिरंगे झण्डे के रंग हैं। कोठे की जमीन पर खादी की ही जाजम बिछी है। सारा दृश्य अत्यन्त साफ-सुथरा और सुन्दर दिख पड़ता है। यवनिका उठते समय कहीं कोई दिखाई नहीं देता। दाहिने दरवाजे से सरस्वती चन्द्र का प्रवेश। उसकी उम्र अब १८ वर्ष के कुछ ऊपर है। वह गौर वर्ण का, ऊँचे कद और भरे हुए शरीर का अत्यन्त सुन्दर युवक है। उसका सिर खुला हुआ है जिस पर लम्बे बाल लहरदार हैं। शरीर पर वह खादी का कुर्ता और धोती पहने हुए है। कपड़े मोटे होने पर भी एकदम स्वच्छ हैं। पैरों में चप्पल हैं जिन्हें वह दरवाजे पर उतार देता है। उसके हाथ में एक खुली हुई चिट्ठी है।]

सरस्वती चन्द्र : (आते हुए) मां !...ओ मां !

[बाईं तरफ के कोठे में से अचला का प्रवेश। उसकी अवस्था ४० साल के करीब होने पर भी वह ६० वर्ष के लगभग दिख पड़ती है। सारे बाल सफेद हो गए हैं। दाँत भी कुछ गिर गये हैं। आँखों पर चश्मा है और चश्मे के नीचे आँखों के चारों तरफ गहरे और काले गढ़े दिख पड़ते हैं। उसकी कमर थोड़ी झुक गई है और हाथ में वह एक मोटी सी लट्ठी लिये है। शरीर पर सफ़ेद खादी की साड़ी और वैसा ही शलूका पहने है।]

अचला : (लट्ठी टेकते-टेकते सरस्वती चन्द्र के निकट आते हुए) हाँ, बेटा।

सरस्वती चन्द्र : (चिट्ठी अचला को देते हुए) मां, सम्मेलन ने मुझे मेरे नाटक पर पुरस्कार दिया है।

अचला : (आँखों के अत्यन्त निकट चिट्ठी ले जा कर) बेटा! बेटा तेरी—तेरी...अभी से ये सफलताएँ, आर्ट एकजीबिशनों में तेरे चित्रों पर के पुरस्कार, सम्मेलन द्वारा अब तेरे नाटक का भी रिकगनीशन मुझे कितना...कितना...और कैसा...कैसा आनन्द देता है ? अपने पिता के आदर्शों और सिद्धान्तों के अनुसार तूने किस अच्छी तरह अपना जीवन आरंभ किया है। (कुछ रुक कर) मुझे सच्चा... सच्चा सुख तो अगले जन्म में उन्हें प्राप्त कर ही मिलेगा...पर...पर...बेटा तेरा ऐसा जीवन...ऐसा पवित्र...ऐसा सफल जीवन देख कर मुझे कैसी...एक अद्भुत प्रकार की कैसी शान्ति मिलती है। (लट्ठी फर्श पर रख, बैठ कर सरस्वती चन्द्र को खींच कर गोद में बिठा लेती है।)

सरस्वती चन्द्र : (मां की गोद में लेटे हुए, उसका मुख देखते-देखते) और, मां, मुझे....मुझे भी इस गोद में कैसा....कैसा अलौकिक सुख प्राप्त होता है। (कुछ रुक कर) मां, जानती है सम्मेलन ने यह पुरस्कार मुझे किस नाटक पर दिया है ?

अचला : किस पर बेटा ?

सरस्वती चन्द्र : पिताजी के एक अधूरे नाटक को मैंने रिवाइज कर पूरा कर दिया है। उसका नाम है 'गरीबी या अमीरी' अथवा 'श्रम या उत्तराधिकार'।

अचला : (सरस्वती चन्द्र के सिर पर हाथ फेरते हुए) आह ! किस तरह... किस प्रकार तू उनके अधूरे कामों को पूरा कर अपनी मां को शान्ति...एक

विलक्षण प्रकार की शान्ति पहुँचा रहा है । (कुछ रुक कर) एक बात जानता है, बेटा ?

सरस्वती चन्द्र : क्या मां ?

अचला : भगवान ने मुझे अच्छे से अच्छा पिता दिया था, अच्छे से अच्छा पति, लेकिन...लेकिन , बेटा, पुत्री के रूप में, पत्नी के रूप में मुझे कभी...कभी वैसी शान्ति न मिली जैसी माता... माता के रूप में मिल रही है। (कुछ रुक कर) बेटा, और इस शान्ति के साथ ही कितना गर्व है मुझे, तुझ पर ? (फिर कुछ रुक कर) बेटा, गर्व बुरी, बहुत बुरी चीज है पर बच्चे के लिये माता... माता का गर्व ? (फिर कुछ रुक कर) वह....वह तो बुरा नहीं, वह तो महान् है।

सरस्वती चन्द्र : वह महान् है ?

अचला : हां, इसलिए कि उसमें महान् चीजों का समावेश रहता है।

सरस्वती चन्द्र : किनका, मां ?

अचला : विश्वास और आशा का, और यही कारण है माता के रूप में मेरी शान्ति का।

[अचला की आँखों से आँसू बह निकलते हैं। सरस्वती चन्द्र एकटक अचला की ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता।]

सरस्वती चन्द्र : मां, तुम्हें अपनी मां की याद है ?

अचला : नहीं, बेटा ! वे तो मुझे होश आने के पहले ही चल बसी थीं।

सरस्वती चन्द्र : तो एक बात तुम नहीं जानतीं !

अचला : क्या ?

सरस्वती चन्द्रः : सन्तान को जो सच्चा सुख और शान्ति, मां प्यारी मां की गोद में मिलती है, दुनियाँ में कहीं... कहीं भी नहीं।

[सरस्वती चन्द्र की आँखों से भी आँसू निकल पड़ते हैं। दोनो आँसू बहाते हुए नेत्रों से एक दूसरे की तरफ देखते हैं।]

यवनिका पतन

(समाप्त)